R.N.I.No.-CHHHIN16015/2014/59925 डाक पंजीयन संख्या–छ.ग./बस्तर/28/2015–17

सुदूर आदिवासी क्षेत्र की लोक संस्कृति एवं आधुनिक साहित्य को समर्पित मासिक

ISSN 2456-2130 Bastar Paati

बस्तर पाति

संपादकीय कार्यालयः–

'बस्तर पाति'

सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास,

जगदलपुर, जिला–बस्तर, छ.ग. पिन–494001

मो.–09425507942 ईमेल–paati.bastar@gmail.com

जल्दी ही इंटरनेट पर–www.paati.bastar.com

मूल्य पच्चीस रूपये मात्र•अंक–11+12+13,दिसम्बर–अगस्त17

प्रकाशक एवं संपादक
सनत कुमार जैन
सह संपादक
श्रीमती उषा अग्रवाल 'पारस'
महेन्द्र कुमार जैन
शब्दांकन
सनत जैन
मुख पृष्ठ
श्री नरसिंह महांती

सहयोग राशि–साधारण अंकः पच्चीस रूपये एकवर्षीयः एक सौ रूपये मात्र, पंचवर्षीयः पांच सौ रूपये मात्र, संस्थाओं एवं ग्रंथालयों के लिएः एक हजार रूपये मात्र। सारे भुगतान मनीआर्डर व ड्राफ्ट ***सनत कुमार जैन*** के नाम पर संपादकीय कार्यालय के पते पर भेजें या स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के खाता क्रमांक **10456297588** में भी बैंक कमीशन 50 रूपये जोड़कर सीधे जमा कर सकते हैं। **अन्य किसी को भी सहयोग राशि न देवें।**

सभी रचनाकारों से विनम्र अनुरोध है कि वे अपनी रचनाएं कृतिदेव 14 नंबर फोण्ट में एवं एक्सेल, वर्ड या पेजमेकर में ईमेल से ही भेजने का कष्ट करें जिससे हमारे और आपके समय एवं पैसों की बचत हो। रचना में अपनी फोटो, पूरा पता, मोबाइल नंबर एवं ईमेल आईडी अवश्य लिखें। के प्रत्येक पेज में नाम एवं पता भी लिखें।

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से बस्तर पाति, संपादक मंडल या संपादक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। रचनाकारों द्वारा मौलिकता संबंधी लिखित/मौखिक वचन दिया गया है। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यवसायिक। समस्त विवाद जगदलपुर न्यायालय के अंतर्गत।

पत्रिका के समस्त रेखाचित्र
श्री बी.एन.आर.नायडू

प्रकाशक, मुद्रक, संपादक, स्वामी सनत कुमार जैन द्वारा सन्मति प्रिन्टर्स, सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर से मुद्रित एवं जगदलपुर के लिए प्रकाशित

विवरण

पाठकों से रूबरू/2
पाठकों की चौपाल/5
बहस/साहित्य में दृश्य और दृष्टि/7
लघुकथा/वर्षा रावल/11
खुदेजा ख़ान पर विशेष
एक मुलाकात/खुदेजा ख़ान/12
ग़ज़लें/सपना सा लगे/खुदेजा ख़ान/16
समीक्षा आलेख/संगत/मधु परवेज़/17
लघुकथा/खुदेजा ख़ान/18
कविताएं/संगत/खुदेजा ख़ान/18
संस्मरण/स्मृतियां जो विस्मृत नहीं होतीं/खुदेजा ख़ान/19
कहानी/सेतु/करमजीत कौर/21
आलेख/हरकत में बरकत/जयचंद्र जैन/23
कहानी/भीड़/डॉ.सुदर्शन प्रियदर्शनी/24
कहानी/मां सबकी एक समान होती है/नरेश कुमार उदास/27
कविता/मदन आचार्य/30
कहानी/चरावैति चरावैति/अनिता रश्मि/31
कहानी/फर्क/रीना मिश्रा रश्मि/33
लघुकथा/शगुफ्ता यास्मीन काजी/35
काव्य/ममता जैन/35
रंगीला बस्तर/क्रांतिवीर गुण्डाधुर/डॉ. रामकुमार बेहार/36
काव्य/मुकेश मनमौजी/37
लघुकथाएं/नरेन्द्र पाढी/महेश राजा/38
लघुकथाएं/डॉ.पूरनसिंह/39
लघुकथाएं/प्रहलाद माली/उर्मिला आचार्य/40
काव्य/विक्रम सोनी/41
लघुकथा/देवेन्द्र मिश्रा/41
लघुकथाएं/डॉ.जे.आर.सोनी/बालकृष्ण गुरू/42
हाइकू/पूर्णिमा सरोज/42
काव्य/लक्ष्मीनारायण पयोधि/43
लघुकथा/अशोक आनन/43
काव्य/सुषमा यादव/रमेश कुमार सोनी/44
विदेश से/प्रदेश का प्रवासी/लोकबाबू/45
काव्य/सरदार सुखदेव सिंह लाल/46
शोध आलेख/धुरवा जाति/इन्द्रो नेताम/47
लघुकथा/ओम मल्होत्रा कुसुमाकर/48
काव्य/संदीप नगराले/शकुंतला तरार/49
लघुकथा/गौतम जैन/49
काव्य/सुभाष जगदलपुरिया/50
काव्य/सुधा वर्मा/51
लघुकथा/डॉ.प्रकाश मूर्ति/52
लघुकथा/महेश राजा/53
काव्य/कृष कर्तव्य रामटेके/53
बढ़ते कदम/चमेली कुर्रे/सूरज नारायण/54
मंचीय काव्य/उमेश मंडावी/55
लघुकथा/कृष्णधर शर्मा/55
मंचीय काव्य/जे.पी.दानी/शकुन शेण्डे/56
मंचीय काव्य/बी.एल.सारस्वत/57
बढ़ते कदम/विश्वनाथ देवांगन/अशोक नेताम बस्तरिया/58
नक्कारखाने की तूती/59 पत्रिका मिली/60
साहित्यिक उठापटक/61
कविता कैसे बदले तेरा रूप/63
फेसबुक वॉल से/63

प्रगतिशील

समाज में रहते हुए हम अपने आसपास देखते हैं तो महसूस होता है कि समाज प्रगतिशील होता जा रहा है। हमारे आसपास हर व्यक्ति प्रगतिशीलता को लपकने की कोशिश करता हुआ दिखता है।

आखिर प्रगतिशीलता है क्या बला ? क्या हैं प्रगतिशीलता के पैमाने ? किन बातों को अपनाना प्रगतिशीलता हो जाता है ? यह शब्द किस क्षेत्र के लिए उपयोग होता है ? वैसे तो इसकी कोई स्पष्ट रेखा होगी नहीं है अगर होगी भी तो हर किसी के लिए अलग–अलग अपनी सुविधा के अनुसार। क्योंकि हमारा समाज आजकल इसी तरह का व्यवहार करने लगा है अपनी क्षमता, अपने फायदे और दूसरों को होने वाले नुकसान के अनुरूप ही वह अपना व्यवहार करता है, अपने सिद्धांत गढ़ता है।

एक समय था जब डॉक्टर कहते थे, शरीर के किसी भी अंग के जलने पर वहां बिल्कुल भी पानी नहीं डालना वरना केस बिगड़ जायेगा। इसी तरह की बात है, मां के दूध से अच्छा डिब्बा बंद दूध होता है। हम प्रगतिशील थे तुरंत अपनाया उस वक्त और आज इसके विपरीत होने वाली बातों को भी अपना रहे हैं। सोयाबीन अभी एक महत्वपूर्ण आहार बन कर आया है। तेल भी फायदेमंद है, आटा भी फायदेमंद है और फिर इसमें प्रोटिन भरपूर है यानी ये दाल भी है। जाने कब इसे गलत साबित कर दिया जाये।

अभी अभी टूथपेस्ट में नमक की उपस्थिति को पुनः स्थापित किया जा रहा है। जैविक खाद और गाय का गोबर पंक्तिबद्ध हैं। और हम सबकुछ अपनाने को तैयार खड़े हैं प्रगतिशीलता लपकने में पिछड़ न जायें।

माना परिवर्तनशीलता प्राकृतिक गुण है तो क्या उसके कुछ आधार नहीं हैं ? वे क्या किसी ठोस धरातल पर अवस्थित नहीं हैं ? या मात्र लफ़्फ़ाज़ी है ? बाजार के अधीन शक्तियां हमें चला रही हैं, ये मात्र एक जुमला है या फिर सच्चाई। प्राकृतिक गुण होने की संभावना जरा कम लगती है। प्राकृतिक होता तो सूरज और चांद भी कुछ न कुछ अपने में बदलाव जरूर करते। अब यहां ये भी एक जुमला न बन जाये कि उनमें भी परिवर्तन हो रहा है परन्तु बहुत ही बारीक है, बहुत समय के बाद होता है। चलो मान लिया सबकुछ। प्रकृति में परिवर्तन आवश्यक है तभी तो परिवर्तन हो रहा है।

इन परिवर्तनों पर ध्यान दें तो महसूस होता है कि कुछ मूल बातें आज भी अपरिवर्तनीय हैं, उनमें लगभग न के बराबर परिवर्तन हुआ है जैसे कि खाना, पीना और सांस लेना। जीने के लिए ये तीनों चीजें आवश्यक हैं इनमें परिवर्तन अवांछित भी है। वैसे ये भी सूरज चांद की तरह प्राकृतिक माना जा सकता है।

मुद्दा भटका हुआ लग रहा है परन्तु हम मुद्दे पर ही हैं। हम कहां तक परिवर्तन अपनाने को प्रगतिशीलता मान लें ? या फिर प्राकृतिक और कृत्रिम के झगड़े में अंतर करते रहें ? क्या हो हमारा सैद्धांतिक आधार जिस पर चलकर विचार करके हम प्रगतिशील बनें ? प्रगतिशीलता इतनी छोटी सी बात नहीं है कि हम चार शब्दों में हां और नहीं के बीच बांटकर खत्म कर दें। इस प्रगतिशीलता ने पूरे विश्व को दो खेमों में बांट दिया है, दो विचारधाराओं में लथपथ कर दिया है। हर आदमी जीवन में कम से कम एक बार और लगभग रोज ही इसका सामना करता है। विरोधाभासी है पर विचारणीय है। पूरे विश्व की संस्कृति का इतिहास भारतीय संस्कृति के सामने कहीं नहीं ठहरता है। हमारे यहां राम और कृष्ण के पूरे वंश का हिसाब है। और अन्य संस्कृतियों में अभी अभी का हिसाब भी लगभग नहीं के बराबर है। जब हम सूरज और चांद के परिवर्तन को लगभग स्थिर मान लेते हैं तो फिर हजारों वर्षों पुरानी संस्कृति का क्या करें। संस्कृति शब्द आज के समय में धर्म के समकक्ष रख दिया गया है अतः इसका प्रयोग कईयों को भ्रमित कर देगा, अतः अपनी जीवन शैली की बातें करें। कितना परिवर्तन हुआ है और क्या परिवर्तन हुआ है क्यों हुआ है कितने वर्षों में हुआ है ? अचानक हम सब प्रगतिशीलता एकदम से अपना लें ? अभी तो रोज ही परिवर्तन हो रहे हैं हम उस परिवर्तन रूपी नदी के बहाव के साथ चलते जायें ?

बड़ा ही उलझन भरा सवाल है। बाप दादा ने जिस व्यापार को खून पसीने से जमाया उसे छोड़कर फिर से नया व्यापार जमाया जाये। जिस आयुर्वेद से अनंत वर्षों से इलाज किया जाता था वो एकदम से बेकार हो जाता है। इस आयुर्वेद को वर्तमान की जरूरत के अनुरूप सुधार करते हुए अपनाने की कोशिश क्यों नहीं की गई ? लगता है अब एंटीबायटिक के सबस्टियूट के लिए हल्दी और नीम की ओर जाया जायेगा, ठीक टूथपेस्ट में नमक की तरह।

इतना लिखकर मैं ठिठक गया हूं क्योंकि, क्या मैं जिस विषय पर लिखने जा रहा था ये भूमिका उसके अनुरूप है ? खैर! ये तो आप ही अपने पत्रों से बतायेंगे।

हम परिवर्तन को अपनायेंगे तो प्रगतिशील बनेंगे, शायद यही प्रगतिशीलता का मोटा–मोटा सा सिद्धांत समझ आता है। पर खुद का बाप, खुद का ही रहेगा, मां भी मां ही रहेगी, घर–द्वार भी होगा, अनाथाश्रम और वृद्धाश्रम इसके पर्याय, प्रगतिशीलता अपनाने के कारण कभी बन पायेंगे ?

बहती धारा में बहते जाना तो भारतीय दर्शन आज भी नहीं है। विवाह करके घर बसाना और जब तक शारीरिक क्षमता है और जीवन में रस है उसे मजे से पीते जाना और फिर अपने ही भविष्य को सन्यास के स्थान पर सड़ते गलते बिताना, क्या

यही है प्रगतिशीलता ? हर चीज में, हर बात में अच्छाई और बुराई साथ साथ होती है उसमें जरा सा विचलन चलाया जा सकता है परन्तु....? जीवन शैली जिस तरह की अपनाई जायेगी वैसा परिणाम अंत में दिखाई देगा। ये बात अलग हैं कि आप को स्वप्नों और अपराधबोध में जीवन जीने पर मजबूर किया जाये तो आप और हम उतने दूर का भविष्य नहीं देख पाते हैं। उस स्थिति में तो हम अपने निकट भविष्य से ही आंखें मूंदे रह जाते हैं।

प्रगतिशीलता वैचारिक होती है न कि भौतिक। हम आज अनाज का विकल्प ढूंढ रहे हैं, पानी पैदा करने का उपाय ढूंढ रहे हैं। कैसे किस्मत के मारे हैं कैसे युग में जीना पड़ रहा है। अनाज खाने में क्या तकलीफ है, पानी के जो वर्तमान स्रोत रहे हैं उन्हें सहेजने में क्यो ध्यान देना नहीं चाहते ?

धारा के साथ बहने की आजादी न जाने कहां बहाकर ले जायेगी पता नहीं। जंगल, नदी और खेत, सहेजने मात्र से जीवन के सारे दुख दूर हो सकते हैं पर हम आक्सीजन पैदा करने वाले उपाय ढूंढने पर ध्यान देना चाहते हैं, नदी और तालाब की जगह भूमिगत जल निकाल कर जमीन खोखली कर पृथ्वी का संतुलन बिगाड़ना चाहते हैं। प्रगतिशीलता का ये चोला बड़ा ही अजीब और खतरनाक है।

धारा के विपरीत चलकर हम वो मुकाम पाना चाहते हैं जिसे हम वैज्ञानिकों की श्रेणी कहते हैं। वैज्ञानिक यानी ब्रह्मा। दुनिया को बदलने की ताकत रखने वाला। ऐसी दुनिया जहां हर गली मोहल्ले में एक ब्रह्मा हो, बल्कि हर आदमी एक ब्रह्मा। सारी दुनिया को हम बदल देंगे, क्योंकि सारी दुनिया ही गलत दिशा में जा रही है। हर स्थापित सिद्धांत गलत है। भारत में पैदा होने वाला हर जीव एक नमूना है। जो एक कर्ण की तरह ओढ़ आढ़कर पैदा होता है। प्रगतिशीलता एक ठप्पा है जिसमें लगने वाली स्याही वहां बनती है जहां से सर्टिफिकेट मिलता है बुद्धिजीवी होने का।

धारा के विपरीत चलना ही तो बहादुरी की निशानी है तब तो नेपोलियन भारत आया लड़ने और फिर और कई प्रगतिशील आये जिन्होंने आपस में लड़ने वाले रूढ़ीवादी (दक्षिणपंथी) राजाओं को जीना सीखाया। भयंकर बीमारी फैली है हर ओर, हर जगह हर विचार में सुधार की आवश्यकता है। दुनिया के साथ चलने की जरूरत है। प्रगतिशीलता अपनाने की आवश्यकता है।

चलो भैया, सर पे गमछा बांधने और कंधे पे पोटली लटकाने की आवश्यकता नहीं है, हर स्थान पर प्रगति ने बोतलबंद पानी और पिज्जा की दुकानें खोल दी हैं जीवन आसान हो गया है। बोझा लादने की जरूरत नहीं रह गई है । वैसे भी बूढ़ी गाय और बैल वर्तमान में अनुपयोगी हो गये हैं, इनकी पर्यावरण चक्र में किसी भी प्रकार की उपयोगिता नहीं रह गई है। हमने तो अब मच्छर, मक्खी समूल मारने की कसम खाई है क्योंकि इनके द्वारा हमारा सुव्यवथित जीवन बाधित होता है। हमें तो पर्यावरण चक्र पुनर्गठित करना है जो हमारी जीवन शैली के अनुकूल हो। हमारी अबाधित और बहती हुई प्रगतिशीलता में कहीं भी, कभी भी बाधा न डाल दे।

प्रगतिशीलता से भले ही शुगर हो जाये पर रातों को खूब जागेंगे और दिन को सोयेंगे। ये साला रात होती ही क्यों है। कई शहरों में अब रात भी नहीं होती है। जब भी बाहर जाना होता है पानी गिर जाता है। गांवों में गिरे समझ आता है पर शहरों में; नालियां भर जाती है सड़कों पर कचरा आ जाता है। और ये गर्मी; मानो सूरज किसी जन्म का बदला ले रहा है। मौसम भी कभी भी कुछ भी हो जाता है।

प्रगतिशीलता की धारा में बह जाना ही मन चाहने लगा है। और ऐसा लगे भी क्यों न, इस छोटे से जीवन को बंधनों में बांध कर रखना ऊपर वाले की मेहनत पर पानी फेरने की तरह ही तो है। लोग तो बेकार ही स्वछंदता नाम देते हैं ईश्वर की नेमत के उपयोग करने को। बड़ा ही हसीन स्वप्न है ये तो दुनिया के दक्षिणपंथी विरोध में उतर आते हैं।

खैर! जीने का हक सब को है और सभी को जीवन में हर वो सुख सुविधाएं मिल जानी चाहिए जो आज बड़े लोगों को मिल रही हैं। इसके लिए ये जरूरी नहीं है कि छोटे लोग भी उतनी ही मेहनत करें। आखिर सूरज की रोशनी को तो कोई नहीं रोक सकता, हर किसी को मिलती है कि नहीं ? शारीरिक श्रम और मानसिक श्रम एक ही जैसा है बल्कि शारीरिक श्रम श्रेष्ठ है। इसी शारीरिक श्रम से ही अनाज पैदा होता है, बड़े बड़े घर द्वार बनते हैं, पुल पुलिया बनते हैं। रेल्वे का नेटवर्क बगैर मेहनत के बन सकता था क्या ?

प्रगतिशीलता अपनाना समय की मांग है। दुनिया में वर्तमान में परिवार में पत्नी के श्रम का मूल्य निकाला जाता है। पिता का अधिकार, बच्चों का अधिकार, घर में पलने वाले कुत्ते तक का अधिकार ध्यान में रखा जाता है। अपने अधिकार की मांग यानी दूसरों का आपके प्रति क्या कर्तव्य है उसकी याद दिलाना। ये दौर बड़ा पेचीदा है और रहस्यमयी भी। कभी कभी तो ये अच्छी सोच का विकृत व्यवहारिक रूप लगता है, जिसमें अपने फायदे नुकसान के अनुसार परिभाषएं बदल दी गईं हैं।

मक्खी और चींटी जैसे छोटे और तुच्छ जीव भी पर्यावरण चक्र में अपनी उपयोगिता रखते हैं। उनके फायदे तो ले लो परन्तु उनसे होने वाले नुकसान इस कदर असहनीय की उनकी जान ही ले लो। ये कैसी प्रगतिशीलता कि हम प्राकृतिक चीजों पर अपनी हुकूमउदूली का आरोप लगा रहे हैं।

अब मुख्य बात, हम लेखक हैं प्रगतिशील तो सबसे पहले हमें ही होना चाहिए। पर नियम हैं श्रद्धांजली देने के बाद कार्यक्रम समाप्त हो जाना चाहिए। सूरज के उगने की दिशा नहीं बदली तो ये नियम कैसे बदलेगा। कार्यक्रम का एक अध्यक्ष होना ही चाहिए, आभार प्रदर्शन होना ही चाहिए। स्वागत शॉल से ही होना चाहिए। सरस्वती पूजन, दीप प्रज्ज्वलन और श्रीफल भेंट दक्षिणपंथी सोच है।

पत्रिकाओं में छपने वाली रचनाओं के लिए मानदेय मिलना ही चाहिए। पुस्तकें छपने के बाद उसकी रायल्टी आनी ही चाहिए। अगर हमारी रचना प्रकाशित हो तो उसकी लेखकीय प्रति आनी ही चाहिए। विमोचन के बाद पुस्तकों की मुफ्त प्रति हमें चाहिए ही। और इसके बाद यदि कोई पूछे कि भैया आपको मेरा कहानी संग्रह कैसा लगा ? तब हम ये जरूर कहें ही कि आपने तो दिया ही नहीं, पढूंगा तब तो बताऊंगा कैसा लगा।

समय बदल चुका है हमारे विचार आज भी उन चीजों को स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं जो वास्तव में बदल चुकी हैं। परन्तु हम उन चीजों को बदल देना चाहते हैं जिसे बदल सकने में हमारी दमदारी नहीं है। हम यहां लघुपत्रिकाओं की बात करें जो अपने सीमित संसाधनों से अपने आस पास के रचनाकारों की रचनाओं को प्रकाशित कर उन्हें मुख्यधारा में लाती हैं। उनकी रचनाओं को देश के बड़े साहित्यकारों की नजरों के सामने रखती हैं। ये पत्रिकाएं किस तरह अपना बजट मेन्टेन करती होंगी, सोचा है आपने। ये पत्रिकाएं मात्र एक या दो लोगों के साहित्य के प्रति पूर्ण समर्पण से ही नियमित अनियमित रूप से प्रकाशित होती हैं। इस दौर में जहां भिखारी को दस बीस रूपये दान देने वाले असंख्य लोग मिल जाते हैं और मंदिरों में दान करने वाले तो करोड़ों की संख्या में हैं, परन्तु पत्रिका मुफ्त में ही चाहिए। हमेशा मुंह फूला हुआ मिलेगा कि पत्रिका तो मिली ही नहीं। जिन्हें पत्रिका का सदस्य नहीं बनना है वे हमेशा यही कहेंगे कि पत्रिका तो आज तक मिली ही नहीं। उलजुलूल रचनाओं को प्रकाशन के लिए देने वाले भी अपेक्षा रखते हैं कि उनसे बाकायदा मानपत्र भेजकर रचनाएं मांगी जाए।

बौद्धिक प्रगतिशीलता का ये रूप बड़ा ही खतरनाक है। उनके पास इस समस्या का एक ही हल है कि वो है एक प्रश्न जिसे पूछकर चुटकियों में शांति प्रदान कर देते हैं। प्रश्न आप भी देख लीजिए—जब इतनी परेशानियां हैं तो आपको पत्रिका प्रकाशन करने कौन कह रहा है, बंद कर दीजिए। कौन होगा जो बगैर स्वार्थ के ऐसा काम करेगा।

बस बात खत्म। प्रगतिशीलता का बम एक ही बार में साहित्य का मैदान साफ कर देगा।

प्रगतिशीलता का दायरा बढ़ते ही पुस्तक प्रकाशन की बात आती है। देश के लगभग हर क्षेत्र में छोटे प्रकाशक प्रकाशन करने लगे हैं। पर सभी रचनाकारों के मन में दिल्ली जयपुर जैसे जगह के प्रकाशक ही अच्छे लगते हैं। क्योंकि उन्हें भ्रम है कि वे आपकी रचनाओं को प्रकाशन हेतु चयन कर चुके हैं इसका मतलब आप प्रेमचंद और निराला तो बन ही गये। इसके बाद आपकी कृति पर आपको रायल्टी अलग मिलेगी। पहले के साहित्यकार तो इसके बलबूते पर अपना घर तक चलाते थे, हमें भी रायल्टी मिलेगी और हम भी अपना बुढ़ापा इसी के बूते काट लेंगे।

प्रगतिशीलता का ये रूप बड़ा ही विचित्र है। पुस्तक आप खुद एक ठो खरीदते नहीं हैं प्रकाशक आपकी पुस्तक की रायल्टी कैसे दे। प्रकाशक की कमाई का मात्र एक ही जरीया है और वो है दीमकों के लिए सरकारी सप्लाई। इस स्थान पर हमारा प्रगतिशील दिमाग ये क्यों नहीं सोच पाता कि हम यहां कैसे गलत साबित हो जाते हैं। सरकारी सप्लाई में सहयोग यानी रिश्वतखोरी को बढ़ावा देना। रिश्वत के पैसे प्रकाशक अपनी जेब से देगा क्या वो बढ़ायेगा आपकी अमर कृति का दाम और उसे आम पाठक से दूर कर देगा। उस पुस्तक का नाम मात्र दो लोग याद रखेंगे, पहला प्रकाशक का टायपिस्ट जो बिल बनायेगा और लाइब्रेरी का बाबू जो अपने दीमक गोदाम के खाता बही में स्टाक मेंटेन करेगा।

प्रगतिशील शुतुर्मुर्ग बनना कितना आसान है न! हम सबके परिचितों में आपको कम से कम एक घोर साहित्यिक व्यक्ति जरूर मिलेगा जो दूसरे साहित्यकार को पत्र लिखकर प्रशंसा करते हुए उसकी कृति को समीक्षार्थ मंगाकर अपनी लाइब्रेरी में सजायेगा। कुछेक तो अधिकारपूर्वक आपसे पढ़ने के लिए पुस्तक मांगकर ले जायेंगे और अपनी लाइब्रेरी समृद्ध करेंगे। क्या हम वास्तव में प्रगतिशील बन गये हैं ? लोकल प्रकाशक यदि छाप रहा है और अगर आपको आपके दिये मूल्य की पुस्तकें दे रहा है तो वो ज्यादा श्रेयस्कर है। आप स्वयं अपनी पुस्तक का प्रचार करें अपने विचारों को लोगों तक पहुंचायें। बड़ा प्रकाशक तो आपके श्रम का पैसा अपने पेट और पेटी का साइज बढ़ाने के लिए कर रहा है। जब एक ही शहर में आपकी टांगें खींचकर आपको गिराने वाले कई साहित्यकार मिल जायेंगे तो दिल्ली जयपुर आदि से संपर्क में रहने वाले साहित्यकार आपको मुख्य परिदृश्य में कैसे आने देंगे। कैसे वे आसानी से आपको प्रेमचंद और निराला बन जाने देंगे। वर्तमान का यही सच है। हम अपनी छद्म प्रगतिशीलता का आवरण खुद उतारें वरना लोग आपके आवरण को उतारने के चक्कर आपकी चमड़ी और दमड़ी भी खींच कर ले जायेंगे।

पाठकों की चौपाल

प्रिय सनत

अंक 9–10 बस्तर पाति देखकर अचंभित हूं, ये पाति है या फिर पोथी, तुम्हारे श्रमसाध्य, अनवरत वैचारिक चिंतन मनन की निर्बाध प्रतिक्रिया का प्रतिफल है। आज ये बस्तर पोथी मात्र बस्तर ही नहीं पूरे देश के कोने–कोने बस्तर दर्शन की थाथी बन गई है।

विख्यात समाजसेवी, पदमश्री धर्मपाल सैनी जी को साहित्य के परिपेक्ष्य में उकेरकर उन्हें साहित्यसेवी, सर्जक, अनुरागी सिद्ध कर दिया। हर कार्यक्रम में उनकी उपस्थिति, उनके साहित्य परिमल, गंधराग से बरसों तक आमसुधिजन एवं बस्तर को सुरभित करती रहेगी।

तुम्हारे साथ जो निष्ठावान साहित्य सुधिजन हैं, वे सभी साहित्यकार तुम्हारे इस यज्ञ की प्रांजल प्रबुद्ध समिमधायें हैं सभी को साधुवाद देता हूं। तुम्हारी बस्तर पाति को रंग कलेवर से प्राण फूंकने वाले अन्तर्मुखी, सिद्धहस्त कलाकर श्री नरसिंह महान्ती एवं सुरेश दलई के साथ तुम्हारा जोड़ बेजोड़ है।

नक्कारखाने की तूती में समसामायिक ज्वलंत मुद्दा धार्मिक कट्टरता पर तुम्हारा आलेख एक ऐसा झन्नाटेदार तमाचा है बशर्ते ये चोट निष्क्रिय निगरगंड लोगों को लगे। सीधे सादे आम आदमी को विषधूंट की तरह, लील जाने वाली बात, भड़ास को तुमने चित्रित कर डाला है। लोगों को ये तसल्ली देता तो है कि हम न कह सके, बस्तर पाति ने तो कह दिया। कृष्ण कुमार शुक्ल की कहानियों से बस्तर पाति ने एक नया आयाम रच दिया, कोई एक घर, एक लड़की की हत्या उत्कृष्ट एवं नारी के अर्न्तद्वंद, उसका निर्णय, को बहुत ही मार्मिक ढंग से श्री शुक्ल ने रच कर पहचान इस शहर को पूरे देश में दी है। इस विशेषांक में सभी लघुकथाएं अच्छी बन पड़ी हैं। बढ़ते चलो, ये गुरूत्तर भार जो तुमने उठाया है, हिन्दी साहित्य की लौ को जलाए रखने का, निरंतर प्रदीप्त रहे यही मंगलकामना है। **शुभेच्छु बी.एन.आर. नायडू, नायडू मेंशन, मेन रोड जगदलपुर**

आदरणीय गुरूदेव, सादर चरण स्पर्श,

आपका आदेश था कि मैं आपके पत्र के जवाब में ये सब न लिखूं कि आपने पूरे शहर को पढ़ा लिखा कर इंसान बनाया है और इस योग्य बनाया कि हम अपना सर उठा कर जी सकें। इसलिए मैं ये सब नहीं लिखूंगा। पर एक बात जरूर कहूंगा कि समय पुनः पीछे चला जाये और मैं आपसे अबकी बार बड़े ध्यान से कुछ सीखूं। बहुत कुछ छूट गया है आपसे सीखने को। पहले तो आपसे इतना डर होता था कि हम सारे छात्र इस प्रयत्न में होते थे कि आपसे सामना क्लास रूम तो क्या पूरे स्कूल और शहर में न हो पाये। आज समझ आता है कि हम कितने गलत होते थे। खैर! आपका आशीर्वाद उम्र के इस मोड़ पर मिल रहा है जो ज्ञान के साथ सुखी जीवन पर अमृत की तरह है। शिक्षक द्वारा अपने छात्र का सम्मान होना सबसे बड़ा सम्मान होता है। मेरा मानना है कि किसी भी काम को करने के लिए साधन से ज्यादा किसी की सद्भावनाओं की आवश्यकता होती है। भले ही ये प्रगतिशीलता के सिद्धांतों के खिलाफ है, परन्तु सच है, मेरा विश्वास है मेरी आस्था है। और मेरा अनुभव है। आप जैसा गुरू हर किसी को मिलना चाहिए यदि हम सर्वमंगल कामना करते हैं तो। आप मेरे लेखन, कार्यक्रम, साहित्यिक गतिविधियों की हमेशा तारीफ और अनुमोदना करते हैं ये एक अमूल्य धन है जो बहुतों के नसीब में नहीं है। आपका आशीर्वाद सदैव रहे।

आप हमेशा मेरे लेखन को पढ़कर उसकी समीक्षा देते हैं, उसकी कमी बेशी बताते हैं, ये मेरे भीतर लेखन को उत्कृष्टता लाने को मजबूर करता है क्योंकि मुझे लगता है कि किसी की मुझसे अपेक्षाएं हैं जो पूर्ण करनी ही चाहिए। आप सदैव बस्तर पाति के लेखकों को फोन करके और पत्र लिखकर प्रोत्साहित करते हैं। नये लोगों पर आपकी कृपा सदैव रहती है। ये एक बहुत बड़ी साहित्य सेवा है क्योंकि वो नई पीढ़ी धीरे–धीरे तैयार हो रही है। और उसे ही आगे चलकर साहित्य का भर उठाना है।

सनत कुमार जैन

प्रिय सनत,

आपके द्वारा लिखित लघुकथा संग्रह ''पत्तों भरी छांव का संपूर्ण मनोयोग से अध्ययन किया। उसके उपरांत आपकी लघुकथाओं के द्वारा मुझे कुछ विचार एवं अनुभव भी प्राप्त हुआ। आपकी लघुकथाओं में मनुष्य का सामाजिक जीवन एवं दैनिक अवलोकन, पारिवारिक समस्यायें, उनसे उत्पन्न कटुताएं एवं उनका निराकरण भी बड़ी सरलतापूर्वक किया गया है, मधुरता का मार्ग भी प्रशस्त किया है। अपनी यात्राओं से प्राप्त अनुभवों, व्यक्ति विशेष का परिचय अत्यंत सरल शब्दों में किया है।

बस्तर पाति के अंकों की कहानियां, लघुकथाएं व कविताएं बहुत अच्छी हैं उनके लेखकों को मेरी ओर से बधाई एवं शुभकामनाएं। आपकी पत्रिका का कालम 'बढ़ते कदम' बहुत सराहनीय है। इसके माध्यम से नई प्रतिभाओं को प्रकाशित कर आप वास्तव में एक नई पीढ़ी का सृजन कर रहे हैं। नई प्रतिभाओं का प्रोत्साहन एवं पुरानी पीढ़ी का सम्मान, बराबर रूप से होने पर ही साहित्य का विकास संभव है। पत्रिका का तेवर जबरदस्त है। आप अपनी पत्रिका को गद्य आधारित बनायें रखें तो उसका भविष्य उज्जवल होगा। शेष शुभ। **वसंत चव्हाण, जगदलपुर**

आदरणीय चव्हाण जी नमस्कार,

आपने एक ही पत्र में दो काम निपटा लिए, बहुत बहुत साधुवाद। मेरे लघुकथा संग्रह ''पत्तों भरी छांव'' पढ़कर संक्षिप्त टिप्पणी प्रेषित की; धन्यवाद। बस्तर पाति के संबंध में आपकी खोजपरक रेखांकित करती टिप्पणी मुझे उत्साहित करने वाली है। आपने सही पहचाना कि बस्तर पाति में नये रचनाकारों को मौका दिया जाता है और उतना ही पुराने साहित्यकारों का मान सम्मान किया जाता है। साथ ही साथ बस्तर पाति को गद्य आधारित बनाने की आपकी सलाह के लिए पुनः धन्यवाद। वैसे हमारी सोच भी यही है कि पत्रिका गद्य केन्द्रित हो, इसकी यही पहचान बने। परन्तु अपने सभी पाठकों, रचनाकारों को जोड़े रखने के लिए कविताओं का प्रकाशन निरंतर होता रहेगा। साहित्यकार कविताओं की बेल पकड़कर ही कहानी और लेख की दुनिया में प्रवेश करता है। ये बात ज्यादातर मामलों में सही है। हम लोग भी स्कूलों में कविताओं पर ही कार्यक्रम करते हैं। बच्चे लेखन के क्षेत्र में आने के लिए कविताओं से जल्दी आकर्षित होते हैं। उनके बीच हम लोग काव्य प्रतियोगिताएं करवाते हैं। और हम प्रोत्साहन स्वरूप उन्हें प्रमाणपत्र देते हैं, शब्दकोष, प्रेमचंद की कहानियों की पुस्तकें देते हैं। बच्चे धीरे धीरे जोड़ तोड़ वाली कविताएं लिखना शुरू करने लगते हैं। अभी तक अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। आपने बस्तर पाति के लिए अपनी सद्भावनाएं प्रकट की, हृदय से ध न्यवाद।

सनत कुमार जैन

प्रिय सनत कुमार जैन, शुभकामनाओं के साथ

29 जनवरी 2017 के दिन आपकी सक्रियता देख कर एक पुरानी कहावत याद आ गई कि ''संयोजक तत्व दुर्लभम्''। उस दिन एक साथ पुस्तक विमोचन, पत्रिका विमोचन, सम्मान समारोह, चित्र प्रदर्शनी और काव्य गोष्ठी के साथ भोजन की उत्तम व्यवस्था, सबकुछ सिलसिलेवार देखकर मन का वैभव गद्‌गद हो रहा था। बधाई दे रहा था।

29 जनवरी 2017 मेरे लिए भी नया दिन रहा है। यूं तो हर दिन नया होता है। उसका स्वभाव प्रतिक्षण नया होते रहना है। इसी तरह जीवन भी नित नया भी नित नया होता रहता है। कभी सकारात्मक तो कभी नकारात्मक और कभी कभी समन्वयवाला रहता है। उसकी गतिशीलता और ऊर्जा में भी नया रूप रंग ढंग के साथ मस्ती चुस्ती सुस्ती की धारायें चलती रहती हैं, जो जीवन को सक्रिय रखती हैं।.....मेरे लिए यह नया दिन इसलिए भी महत्वपूर्ण रहा कि इस जीवन की एक स्वांत सुखाय गतिविधि अर्थात साहित्य सृजन का सम्मान होना था। अभी तक जो पुरूस्कार, अलंकरण या सम्मान मिले वे सब समाजसेवा, शिक्षा, खेलकूद या अन्य प्रवृत्तियों से संबंधित रहे।.........आपके साथ पाति के द्वारा संबंधों में पहली बार लेखन के लिए सशक्त सी अभिव्यक्ति मिली, जिसके अंदर बैठा कवि मस्ती में झूम रहा था।.......साहित्य रचना के लिए सम्मान, मेरे लिए नया रहा इसलिए उसने मुझे नयापन दिया। नित नवीनता सृष्टि के साथ व्यष्टि की प्रतिभा का भी प्रदर्शन है। यह नवीनता ही गहरी प्रसन्नता है, जिज्ञासा और आकर्षण का मूल है। कल्पना को उड़ान देने की गति है विचारों का सृजन कर आचरण की ऊर्जा बन जीवन को नवीनता प्रदान करना है। साहित्य के इस स्थानीय सम्मान ने इतनी सारी नियामतें 29 जनवरी 2017 को दी हैं। अतः हार्दिक भाव भरा धन्यवाद स्वीकार करें तो मेरे हर्ष में चार चांद लग गये....यह हर्ष आसक्ति न बने इसके लिए जाग्रत रहा हूं। यह जागृति मेरी जीवन धारा का मुख्य प्रवाह है, जो मुझे आसक्ति से अनासक्ति की ओर साधते रहता है। मेरे जीवन के प्रेरक विचारों में एक है कि 'मेरी कोई सफलता अंतिम सफलता नहीं है। मेरी कोई असफलता अंतिम असफलता नहीं है।' इसलिए नित नये प्रयत्न मेरे जीवन की जिज्ञासा अभिलाषा और अभिव्यक्ति बनने में उदासीन नहीं रहे हैं। यह प्रयत्न स्फूर्ति मेरा आध्यात्मिक बल है।.....आपमें इसे देखकर खुशी प्रकट करता हूं।

सस्नेह ***धर्मपाल सेनी, माता रूक्मिणी आश्रम, विनोबा ग्राम, डिमरापाल, जिला बस्तर (छ.ग.) मो.–9479208234***

आदरणीय ताऊजी सादर चरण स्पर्श

आपका कथन कि–मेरे जीवन के प्रेरक विचारों में एक है कि 'मेरी कोई सफलता अंतिम सफलता नहीं है। मेरी कोई असफलता अंतिम असफलता नहीं है।' इसलिए नित नये प्रयत्न मेरे जीवन की जिज्ञासा अभिलाषा और अभिव्यक्ति बनने में उदासीन नहीं रहे हैं। यह प्रयत्न स्फूर्ति मेरा आध्यात्मिक बल है।.....आपमें इसे देखकर खुशी प्रकट करता हूं।

पढ़कर आज मैं जो आनंद प्राप्त कर रहा हूं वह एक अविस्मरणीय प्राप्ति है। इसे आपके समक्ष व्यक्त करने का प्रयास कर रहा हूं। ऐसे व्यक्ति से आशीर्वाद पाना अपने आप में अद्‌भुत होता है जिसका सम्मान सारी दुनिया करती है। उस व्यक्ति की नजदीकी पाना जीवन में बहुत कुछ पा लेना होता है। मैंने क्या पाया है, यह मैं ही समझ सकता हूं। आपने जो विश्वास मुझ पर किया है, वह एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी का अहसास दे रही है। आपने अपने जीवन भर में जो अमूल्य पूंजी पाई है, उसको पाने का रहस्य उजागर किया है। उस रहस्य के माध्यम से मुझे एक महती जिम्मेदारी से जोड़ दिया। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपका आशीर्वाद हमेशा से मेरे साथ और भविष्य में रहेगा भी। यही आशीर्वाद मुझे आपकी दिखायी मंजिल तक लेकर जायेगा। आपका विश्वास कायम रहे, मैं सदैव इसका प्रयास करूंगा।

आपको बस्तर पाति एवं साहित्य एवं कला समाज की ओर सम्मान प्रदान कर हमने समाज एवं साहित्य में अपना स्थान बनाया है। आपका साहित्यिक अवदान अमूल्य है जो कि यथार्थ है न कि काल्पनिक। इसे हम आपके जीवन का आपके द्वारा किया गया शोधकार्य कह सकते हैं, जिसमें आपके जीवन के संघर्षों का चित्रण है। आपकी प्रेरणा और आपका आशीर्वाद इस क्षेत्र को साहित्य की मधुरम धारा से सुशोभित करेगा। भविष्य में आपके कृतित्व पर शोध कार्य होंगे।

मैंने शुरू से ही अपने उद्‌देश्य बना रखे हैं जिनसे मैं समझौता अब तक नहीं किया हूं, इन पर चलकर ही 'बस्तर पाति विशिष्ट सम्मान' का सम्मान बरकरार रखूंगा। स्वांतः सुखाय रचनाकारों को ही समाज के समक्ष लेकर आना चाहते हैं इसके लिए प्रयासरत हैं। आपने तो अब तक वर्तमान 'महान' साहित्यकारों से कहीं बहुत ज्यादा और उत्कृष्ट लेखन किया है, उस लेखन सामग्री को साहित्यिक समाज में खुलकर आना जरूरी है। वरना आपकी कृति के साथ अन्याय होगा। ये आपके द्वारा कम होगा और हम सभी के द्वारा बहुत ज्यादा होगा। स्वातः सुखाय लेखन के लेखक प्रचार प्रसार से दूर होते हैं अतः उन्हें और उनके लेखन का सम्मान करना, उस पर चर्चा करना जिम्मेदारी बनती है उनकी जो उस वक्त समाज में सक्रिय होते हैं।

इस सम्मान से समाज का ही भला होना है क्योंकि आज समाज को आप जैसे उत्कृष्ट लेखन की ही आवश्यकता है। समाज दिशाहीन होता जा रहा है भले ही वह बहुत ज्यादा प्रगति कर चुका है। खासकर युवाओं को आप जैसे साहित्यिक संत की आवश्यकता है। महिलाओं के सम्मान को समाज में स्थापित किये रहने के लिए आपका व्यवहारिक योगदान प्रत्यक्ष नजर आता है जो आपके साहित्य में भी अद्‌भुत ढंग से रचा बसा है। आपके अनुभवों और उनकी सफलताओं असफलताओं का विज्ञान उसमें समाहित है। अतः आपसे निवेदन है कि अपने लेखन को प्रकाशित करवाने का प्रयास करें ताकि हम सब उससे लाभान्वित हो सकें, समाज लाभान्वित हो सके।

अंत में पुनः कहूंगा कि आपको सम्मानित करना यानी सूरज को दिया दिखाना है। हमने एक दुस्साहस किया है, पर हम जानते हैं कि आप हमारे दिलों में बसे ताऊजी हैं, हम सबको दोनों हाथों से आशीर्वाद देते हैं। सदैव आपके आशीर्वाद का आकांक्षी **सनत कुमार जैन**

सनत भाई, नमस्कार

बस्तर पाति के अंक मुझे प्राप्त होते रहते हैं। पत्रिका तारिफ के काबिल है क्योंकि ये साहित्यिक एवं वैचारिक मूल्यों की पत्रिका है। वरना आजकल की साहित्य के नाम पर प्रकाशित पत्रिकाएं साहित्य के नाम पर न जाने क्या क्या परोस रही हैं, पढ़कर माथा ठनक जाता है। मैं जानता हूं कि एक अच्छी पत्रिका निकालना कितना कठिन कार्य है। लघु पत्रिकाओं की स्थिति बहुत संघर्षपूर्ण है उसे विज्ञापन नहीं मिलते, घर फूंक कर निकालना होता है। कुछ जुझारू, आप जैसे लोगों के जुनून के कारण इस तरह की पत्रिका निकल पा रही है।

बस्तर में प्रकृति का सौन्दर्य टपकता है, वहां की कला संस्कृति, जनजीवन बहुत अच्छा है, क्या कारण है कि बस्तर इतना शानदार होने के बाद भी देश व विश्व का एक अच्छा पर्यटन स्थल नहीं बन पाया ? आज की राजनीति बड़े हल्के स्तर की हो गई है। अपने विकास में ही सबका विकास खोजते हैं। कोरे नारे कोरे वादे, कोरी बातें कब तक जनता सहन करेगी। आजादी के इतने वर्षों बाद आवास पानी, अनाज, बेरोजगारी की समस्या मुंह बाये खड़ी है। अमीर और अमीर, गरीब और गरीब होता जा रहा है पता नहीं कब परिवर्तन आयेगा। **राजेन्द्र पटोरिया, आजाद चौक सदर नागपुर–440001 मो.–9421779906**

पटोरिया जी, नमस्कार,

आपने पत्रका के संबंध में जो चिंता प्रकट की है उस पर अगले अंक में अपना एक आलेख प्रकाशित करूंगा। **सनत कुमार जैन**

साहित्य में दृश्य और दृष्टि

एक व्यक्ति अपने कमरे में बैठा गरम कॉफी की चुस्कियां ले रहा था। वह थका था और कॉफी में उसकी जान बसती थी। 'क्या खूब बनी है'— वह मगन हो पी रहा था। इतनी प्यारी कॉफी उसने कभी नहीं पी। कॉफी के स्वाद के अतिरिक्त वह आस–पास की दुनिया भूल गया। उसे मानों कॉफी में ब्रम्हानंद प्राप्त हो रहा हो।

थोड़ी देर बाद वह टहलते हुए बरामदे में आया। शाम का समय था। सामने गटर के पास सूअरों का झुण्ड दिखा। छोटे–बड़े सभी किस्म के सूअर। अरे! ये क्या ये सूअर तो मैला खा रहे हैं। छी !

उसका जी मचल गया और प्रतीत हुआ अब उल्टी हुई कि तब! वह वॉश बेसिन की ओर भागा!

ऊपर एक ही व्यक्ति के दो अनुभव हैं। एक में उसे ब्रम्हानंद का आस्वाद मिल रहा है तो दूसरे में ठीक विपरीत! घृणा तिरस्कार!

दोनों सत्य हैं। दोनों ही अनुभव निजी हैं।

एक में स्वाद का वर्णन शब्दों के परे है। उस वक्त कॉफी से बढ़कर उसे और कुछ अच्छा लगता ही नहीं। दूसरे में मन का मैल इतना सघन हो चला है कि खाया–पिया अमृत भी बाहर!

आलोचक / पाठक पूछ सकते हैं कि यहां तो भोगा हुआ यथार्थ सिर्फ कॉफी का आस्वाद है। जो निजी है। सूअर का सत्य तो कुछ और था। मैला सूअर खा रहा है न कि वह व्यक्ति। उसे क्यों उबकाई आने लगी? सूअर का सत्य (निजी) उस व्यक्ति का सत्य कैसे बन सकता है!

प्रश्न वाजिब है।

प्रेमचंद ने क्यों और कैसे कफन जैसी कहानी लिखी जबकि यह उनका भोगा यथार्थ नहीं था। और भोगा सच नहीं था तो साहित्य (रचना) भी संदेह के दायरे में है।

इस प्रश्न का उत्तर प्रेमचंद या उनकी कहानी नहीं बल्कि इस सच्चाई में है कि, मनुष्य एक भावशील प्राणी है। चाहे पूरब हो या पश्चिम — मनुष्य एक भावना से परे नहीं हो सकता और यही भाव उसे संवेदनशील, दूसरे अर्थ में ग्रहणशील बनाते हैं।

साहित्य और कला कोई वस्तुनिष्ठ विषय नहीं है कि इसका एक ही उत्तर हो। ये विषयात्मक हैं इसलिए इसके लिए स्थायी सिद्धांतों की खोज जटिल होती हैं। इस लेख के लेखक का विचार है कि साहित्य और कला मूलतः भाव क्षेत्र का विषय है जो अत्यंत लचीला और चंचल है — पर है अनादि सत्य की तरह! अर्थात् मनुष्य कुछ भी कहीं भी चला जाए, कितना भी ऐश्वर्यमान बन जाए, रहेगा भावशील प्राणी ही! इस सनातनता को साहित्य के मूल सिद्धांतों के रूप में विचार किया जाना चाहिए। क्योंकि इसे समझते ही ना सिर्फ मनुष्य बल्कि साहित्य की समझ भी हमारी परिपक्व हो जाती है!

खैर,

ऊपर के विषय में व्यक्ति का स्वाद लेना—एक में उसकी जुबान और उसकी चेतना अर्थात् वहीं गवाह बनता है दूसरे में जुबान तो सूअर की है मगर उसकी चेतना तटस्थ नहीं रह पाती। वह घृणा से भर उठता है और उल्टी कर देता है। गवाह दोनों स्थिति में बनता है। अपना सच और दूसरे का सच, दोनों ही उसका निजी भोगा हुआ सच (यथार्थ) बन जाता है।

क्या ये दोनों सच वास्तव में सच हैं। अथवा इन्हें अन्य एंगल से भी परखा जाना चाहिए। क्या निजी सच साहित्य हो सकता है? क्या निजी सच, युग का सच हो सकता है? या फिर देखा गया (जिसे भोग की तरह भोगा गया है— व्यक्ति द्वारा उल्टी करना भोग ही है) सच ही वास्तविक सच है? इनमें साहित्य कहां है ? साहित्य — ऐसा सच जो न सिर्फ युग का (अपने समय का) सच हो बल्कि मानवीय गरिमा युक्त हो।

ऊपर की कहानी (घटनाओं) को आगे बढ़ाते हैं —

कॉफी पीकर वह व्यक्ति उमंग से भर उठा। बरामदे में टहलने लगा। बाहर सूअरों का झुण्ड मैले में मुंह लगाये था। अरे यह क्या? इस गंदगी में ऐसा स्वाद! वह उत्सुक हो उनके झुण्ड में शामिल हो गया। सबसे बुजुर्ग से दिखने वाले सूअर से पूछा — 'अरे ये क्या जहमत लगाए बैठे हो? मैं तुम्हे ब्रह्म रस पिलाता हूँ। तुम्हारी हामी हो तो प्याली में गरम कॉफी बनाकर लाऊॅं! जरा उसे पीकर तो देखना! सब भूल जाओगे।'

सूअर ने बड़े इतमीनान से शुक्रिया कहा — फिर अपना मुंह चटकारते हुए इतना ही कहा — 'काश! कि तुम मेरी जुबान के स्वाद को समझ पाते!'

वह लौट आया। सोचते हुए!

एक का सत्य दूसरे द्वारा खारिज कर दिया गया!

नहीं। सिर्फ और सिर्फ निजी सत्य साहित्य अर्थात् सबका सच नहीं हो सकता। साहित्य का सच तो सबका सच होता है।

निजी सच! एक और उदाहरण लेते हैं —

पिता अपने तेजस्वी बेटे के लिए बहुत पोजीटिव है। उसका बेटा पढ़ लिख कर खूब कमाएगा। अच्छी नौकरी करेगा। वह दिन–रात अपनी कमाई उसमें खर्च करता है। रातों को उठकर गरम चाय पिलाता है ताकि बेटा पढ़े और नौकरी पाए! उसके अरमान सातवें आसमान पर हैं। कर्ज

लेकर बेटे को कोचिंग संस्थान भेजता है और एक दिन बेटा ऑफिसर बन दूसरे शहर में नौकरी करने चला जाता है। कुछ दिनों के बाद शादी होती है और फिर बहु भी अपने पति के पास! पिता आहत होकर इस सच्चाई का सामना करते हैं। कर्जा, रातों को जागना, अपने सारे अरमान उन्हें फिजूल लगता है। बेटा स्वार्थी, मतलबी निकला। किसी काम का नहीं। और एक दिन बीमार होकर खाट पकड़ लेते हैं– बेटे को खबर भेजी जाती है मगर उसे बीमार बाप को देखने की फुरसत नहीं।

कहानी बहुत भावुक है। पाठकों को आर्द्र कर सकती है। कैसा निकम्मा बेटा निकला!

पर, क्या यहा हमारे समय का सच है – ठीक वही जो सच बाप देख रहा है या और कुछ! बाप का निजी अनुभव (अच्छा या बुरा) क्या हमारे समय का यथार्थ हो सकता है?

सीधे अर्थ में तो नहीं। नितांत निजी अनुभव समय का सत्य नहीं पकड़ पा रहा है। रचनाकार को बेटे–बहु व शहरी जीवन की आपा–धापी वाली जीवन शैली को दिखाना होगा, तभी हमारे समय के शहरी जीवन का सच जिसमें उसका बेटा जुड़ा है, सामने आएगा। निजी संपत्ति तभी सार्वजनिक मटेरियल हो पाएगी।

आज के दौर में एक समूह द्वारा जो पश्चिमी तर्ज पर भोगे हुए यथार्थ को ही साहित्य की सामग्री मानते हैं, उन्हें सतर्क हो जाना चाहिए। भोगा सच आपने जीया और लिखा। हम उन्हें कितना सच माने ? एक नौकरानी अमीर बाई के यहां काम करती है। झाड़ू–पोंछा। नौकरानी सतायी जाती है, उसका एक बच्चा बीमार है, पति शराबी है, नौकरानी के पास पैसे नहीं हैं – वह मदद के लिए मालकिन से पैसे मांगती है – पर मिलता कुछ नहीं। एक पर जुल्म ही जुल्म, समय की मार और व्यक्ति (मालकिन) की भी उसपे संभवतः मालिक की बुरी नजर! नौकरानी पिस रही है – मगर जाए तो जाए कहां!

कथा दर्दनाक है – मगर खतरा ये है कि दूसरे पक्ष को तो यहां सुना ही नहीं गया। मालकिन बिना सुने ऑफिस को भागती है – उन्हें मीटिंग अटेंड करनी है। क्लास लेनी है। पढ़ानी है। डीन आने वाले हैं उसकी तैयारी करनी है – अग्रिम पैसा इसलिए नहीं दी कि पिछली बाई यही बहाना बनाकर पांच हजार लेकर उड़ गयी थी।

अर्थात् घटना एक खास समय व स्पेस में प्रतिक्रिया करती हैं। उनका सम्पूर्ण अवलोकन किये बिना क्या आप सत्य तक पहुंच सकते हैं ? समय को आपने कहां तक देखा बस व्यक्ति के निजी अनुभव तक! और आप इसे प्रमाणित साहित्य मानते हैं। समय का सच्चा यथार्थ!

पूर्व में बहस कालम द्वारा यह बताया गया है कि साहित्य की विश्वसनीयता पात्र के समय व स्थान के अर्न्तद्वन्द से जुड़ी है। इस कालम में पूर्व में लिखा जा चुका है कि रचना दूसरे अर्थ में हमेशा अपने समय, एक खास स्थान और इनके मध्य चरित्र के मार्फत घात प्रतिघात का नतीजा है।

रचनाकार समय की पहचान या स्थान या चरित्र की विश्वसनीयता – इन तीनों में चूक, रचना को रचना नहीं बनने देती। चरित्र की प्रमाणिकता भी समय व स्थान की विश्वसनीयता होने पर ही सिद्ध होते हैं।

ऊपर के उदाहरणों से बात स्पष्ट हो जाती है निजी बनाम सार्वजनिक, समष्टि बनाम व्यष्टि, स्वांत सुखाय या परहित सुखाय, भोगा यथार्थ या अनुभूत यथार्थ जैसे शब्द बहुत ज्यादा सहित्य के लिए प्रासंगिक नहीं हैं। ऐसे लेख या विचार बौद्धिक विमर्श के लिए तो ठीक हैं – प्रश्न है – ऐसे प्रसंग क्या साहित्य के हित में भी हैं ?

अर्थात् रचना से हमें सच का दर्शन हो रहा हैं ? यह सवाल ही ऐसे 'वाद' (इज्म) को संदेह के दायरे में ला खड़ा करता है।

उसी तरह का एक और भ्रम है – रचना स्वतः सुखाय हो या परहित सुखाय?

आजकल इस विषय पर सीधे बात नहीं की जाती फिर भी इस प्रसंग को इसलिए उठाया गया है कि आज का लेखक स्वतः यथार्थ लिखने का दावा नहीं करता। इसे नकार दिया गया लगता है। इन दिनों सामाजिक सोद्देश्यता की बात की जाती है और लेखकों के लिए विभिन्न एजेंडे तय किए जाते हैं। महिला लेखकों के लिए स्त्री विमर्ष, स्त्री आजादी इत्यादि एजेंडे तय किए गये हैं और उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे कथा उपन्यास में सेक्स के जरिए स्त्री स्वतंत्रता, स्त्री अस्तित्व के दर्शन बघारे। इसी राह अन्य लेखक अस्तित्ववादी दर्शन, मार्क्स दर्शन, जनवादी दर्शन, यथार्थवादी, अतियथार्थवादी इत्यादि उत्तर–उत्तर आधुनिक रचनाएं करें। जैसा कि पूर्व में बस्तर पाति के बहस कॉलम में बार–बार ऐसे वादों की निरर्थकता, बिना विचारे आयातित विचारों की न सिर्फ भर्त्सना की जाती रही है बल्कि तथ्यों और तत्वों द्वारा उन्हें बेगैरत, अनावश्यक और कई बार तो अपनी गरिमा के लिए इन्हें हास्यापद तक माना गया है। आगे भी बहस कॉलम के जरिए ये सिद्ध करने का प्रयास किया जाएगा कि विचार हो या दर्शन या अर्थव्यवस्था अथवा समाज व्यवस्था या सद्साहित्य, अपने लोगों द्वारा अपनी मिट्टी से अपनी मिट्टी के लिए कुछ सार्थक रचा जा सकता है।

ऊपर के प्रसंग को आगे बढ़ाते हैं।

तुलसी ने बड़े गर्व से एलान किया कि वे तो स्वांतः सुखाय के लिए रचते हैं। आधुनिक आलोचकों के नाक –भौं सिकुड़

गए। ऐसी रचना तो आसामान्य है ? स्वयं के सुख के लिए रचनारत रहना ? यानी आनंद मनाना अर्थात् आनंद में भी भोग भाव है। आप तटस्थ नहीं हैं। इसलिए आपकी रचना संदेह के दायरे में है और समाज के लिए तो अहितकर है। यानी ऐसी रचनाओं से समाज को क्या हासिल ?

असल में दृष्टिदोष तुलसी में नहीं तुलसी को देखने वालों में है। आपने तुलसी को एकांगी दृष्टि से देखा।

क्या तुलसी की बात किए बगैर भारतीय साहित्य पूर्ण हो सकता है?

क्या हम सिर्फ कबीर की तो चर्चा करें और तुलसी को छोड़ दें। फिर तो जायसी व बिहारी और सूरदास को और मीरा को (क्रांतिकारी होने के कारण मीरा की भी चर्चा की जाती हैं) भी छोड़ दें। क्योंकि इन सबों के सुख या दुःख अत्यंत निजी थे। वहीं इनके साहित्य रचना विषय!

निजी होते हुए भी हमारे लोक समाज ने इन्हें क्यों स्वीकार किया? इस प्रश्न का उत्तर क्या है ?

इसका एक ही उत्तर है – वही मानव की ग्रहणशीलता– यहां कोरा सिद्धांत – भोगा हुआ निजी यथार्थ न होकर भोगा हुआ वो सच है जो लोकहित व लोकभाव के साथ है। क्या तुलसी के राम में हठवादियों को अपना ब्रह्म नहीं दिखता। तुलसी के राम और उस राम (ब्रह्म) के लिए स्वयं को कबीर द्वारा कुतिया कहना ऊपरी तौर पर बिल्कुल भिन्न है – फिर भी क्या दोनों के राम भीतर से एक नही! तुलसी के निजी राम से (जो महान हैं, राम का आदर्श मानव सीमाओं से परे सर्वहितकारी है) भक्त (व्यक्ति) का उद्धार होता है तो कबीर को तटस्थ योगी दृष्टि से समदर्शी भावना या कहें समदर्शी आंखे पैदा होती हैं। लाभ अंततः तो व्यक्ति (भोक्ता) को ही मिलता है जो समाज या समूह बनाता है। एक का निजत्व किस तरह सार्वजनिक रूप से हितकारी होता है, दूसरे (कबीर) व्यक्ति को निर्वैक्तिकता में बदल कर सार्वजनिक हित की बात करते हैं।

व्यक्ति दोनों में है और व्यक्ति अंततः दोनों को लाभान्वित कर रहा है। तुलसी व्यक्ति को व्यक्ति ही रहने देने की वकालत करते हैं–वे कहते हैं (जीव, आत्मा व ईश्वर पृथक्–पृथक् हैं–के सिंद्धांत के मानने वाले से है– भक्ति समुदाय) व्यक्ति (जीव) व्यक्ति ही रहेगा उसे एक महान आदर्श जो समस्त मर्यादाओं का गुच्छा है (राम) में विलय कर दें।

वहीं कबीर योग व ज्ञान से समदर्शी व्यक्ति की रचना कर रहे होते हैं। वे कहते हैं तुम्हारा नाम, पता जाति, धर्म सब लोप हो जाए और व्यष्टि की नागरिकता स्वीकार कर लेना, अपनी निजी नागरिकता छोड़कर मेरे पास आओ– व्यापक बड़े लोक की नागरिकता के लिए।

अतः जब कबीर की बात होगी तो तुलसी की भी होगी, जब कभी तुलसी विचारे जाएंगे कबीर भी विचारे जाएंगे। ठीक वैसे ही क्या सिर्फ प्रेमचंद की बात करके हिन्दी साहित्य पूर्ण माना जाएगा ? हम प्रसाद को कैसे छोड़ सकते हैं। उसी तरह आप निराला, नागार्जुन और मुक्तिबोध की बात तो करेंगे मगर सुमित्रानंदन पंथ और सुभद्राकुमारी चौहान को छोड़ देते हैं।

प्रसंगवश उसी तरह का एक उपन्यास है चित्रलेखा, जिस पर हिन्दी फिल्म भी बनी है। भगवतीचरण वर्मा। वर्मा जी ने इस उपन्यास के मार्फत जीवन के बड़े सटीक व क्रांतिकारी सवाल उठाए हैं। यही नहीं, इस उपन्यास में उस समय (आज के भी) के भ्रामक सवाल जीवन, सन्यास और भोग पर अद्भुत किताब लिखी है जो हर मायने में तार्किक व प्रगतिशील है। इसने सन्यास के मिथ्या दर्शन को खारिज किया है और भोग जीवन को स्वीकार्यता दी है। उसे सहज बताया है। कई मायनों में अपने समय का क्रांतिकारी विचार! जो लोग सन्यास की उलटी नहीं कर पाते और भोग को भी पचा नहीं पाते उन्हें ये किताब अवश्य पढ़नी चाहिए।

मगर इसमें समाज नहीं कोई ''इज्म'' नहीं कोई एजेंडा नहीं दिखता। समाज नहीं दिखता, समाजवादी आलोचना के दायरे में नहीं आता इसलिए लेखक व उसकी रचना दोनों खारिज हो जाती है।

मानसिक दिवालियापन ?

आयातित गुलाम मानसिकता ?

अपनी मिट्टी अपनी जमीन की अवहेलना, अस्वीकार्यता ?

इसे क्या कहें ?

पाठक (विशेषकर हमारे रचनाकार बंधु) गौर फरमाएं :–

लक्ष्मण मूर्च्छित हैं। राम विलाप कर रहे हैं। एक अति साधारण मानव की तरह क्रन्दन कर रहे हैं कि यदि लक्ष्मण को कुछ हो गया तो वे वापस अयोध्या नहीं जाएंगे। यही प्राण त्याग करेंगे। वे धनुष–बाण छोड़कर सीता को भी भूल गये हैं। उनके सारे सहयोगी हताश निराश। राम विलाप कर रहे हैं–अयोध्या लौटकर माता को क्या कहेंगे?

हमारा पाठक कभी–भी राम के इस विलाप पर सवाल नहीं उठाता है। आखिर महाकवि ने राम को अत्यंत मानवीय भावों के अधीन होना बार–बार बताया है। इससे महाकवि की महारचना की तनिक भी क्षति नहीं होती। लोकमानस को वह सब कुछ सहज स्वीकार्य है। रचनाकार जानता है कि राम अतिमानव हैं फिर भी इस रचना को आम मानवों के बीच प्रस्तुत करनी है। मानवीय भावनाएं समान है। भावों का सामान्यीकरण सहज रूप से महाकवि ने प्रस्तुत किया है।

जरा गौर करें – लक्ष्मण को मूर्च्छित और मृत्यु के आगोश में जाते देख राम चीख पड़े। मित्रों ! अब तो रावण की खैर

नहीं। उसने हमारे भाई को मारा है, मैं चुन–चुनकर उसके खानदान को ही नष्ट करूंगा। उठो मित्रों। हमें लक्ष्मण के खो देने का शोक नहीं मनाना चाहिए, आखिर दुनिया को क्या संदेश जाएगा – हम अपने एजेंडे के लिए एक भाई का त्याग नहीं कर सकते। दरअसल यही तो संदेश पूरी दुनिया में जाना चाहिए कि देखो राम को ! कितने बड़ी व्यक्तिगत क्षति मगर सब भूलकर अपने सोद्देश्य (अपने एजेंडे) की ओर अग्रसर हैं। नारे लगाओं – इन्कलाब जिंदाबाद! इंकलाब जिंदाबाद!

मित्रों! यदि हमें राम पर आधुनिक या उत्तर आधुनिक एजेंडाबद्ध रचना लिखनी हो तो वह तो कुछ वैसे ही होगा!

नहीं ?

असल में बस्तर पाति साहित्य में एकांकी दृष्टि, एकांकी अधूरे आयातित सोच की भर्त्सना इसलिए नहीं करता कि यह भी हमारा एजेंडा है। नहीं। हम तर्कपूर्वक, विचारपूर्वक और खुली बहस हेतु विद्जनों के समक्ष प्रस्ताव रखना चाहते हैं। हम ये कभी नहीं कहेंगे कि यह 'ही' – बल्कि हम ये कहेंगे यह 'भी' ....., आपका क्या ख्याल है ?

ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट है कि निजी राम जो भावों के अधीन हैं – एकदम मानवीय है। राम का, राम के पाठकों का निजत्व सुरक्षित है। राम का अस्तित्व है। पर दूसरे तरह के एजेंडाबद्ध या जानबूझकर सोद्देश्य रचना में व्यक्ति का उसके निजत्व का क्षरण हो जाता है। भाव नहीं विचार आरोपित हो रहा है। क्या यह साहित्य का भाव है या कु–भाव, विचार है या व्यभिचार ?

यह तो सरासर साहित्य की क्षति है। साहित्य मानवीय चरित्र पर टिका है, चरित्र है ही नहीं। वहां सिर्फ एक कामरेड 'फिट' किया जाता है। फैक्टरी के उत्पाद की तरह !

निजी बनाम सार्वजनिक व्यक्ति बनाम समष्टि या स्वांतः सुख या पर दुःख कातरता – चाहे चरित्र जैसे उठाया जाए प्रश्न है कि क्या चरित्र की विश्वसनीयता बनी है, क्या चरित्र निजी है मगर सार्वजनिक अपील भी करता है। निजी कब नितांत निजी नहीं रह जाता और कब वह सार्वभौम हो जाता है।

सैकड़ों बेहतरीन उदाहरण हमारे क्लासिकी में भरे पड़े हैं।

कुंती का द्वन्द कितना निजी है। वह तो अपने पुत्रों से भी अपना दुःख नहीं कह पाती। किसी से नहीं कह पाती। जैसे – जैसे महाभारत युद्ध करीब आता है – कुंती का हृदय दावानल में ही धड़कता है। देखा जाए तो पाण्डवों को अपने वरिष्ठ भ्राता कर्ण के साथ युद्ध ! एक माता के हृदय में क्या बीतती होगी।

पर यह निजत्व महाकवि की दृष्टि पाकर संसार के लिए एक कठोर यथार्थ की रचना करता है। कुरूक्षेत्र के अलावे स्त्री के हृदय में एक अलग युद्ध जो अकसर ही अनदेखा अनसुना रह जाता है।

साहित्य वास्तव में जितना निजी होता है उतना ही सर्वाभौम भी। कोई भी एजेण्डा लेखन चरित्र के निजत्व की रक्षा नहीं कर सकता इसलिए पश्चिम से आयातित यह कुकुरमुत्ता विचार जितनी जल्दी खारिज हो उतना अच्छा!

अब भी आप भोगा यथार्थ और देखा यथार्थ जैसी जुमलों को स्वीकारेंगे ? असली साहित्य की जमीन वहां है जहां रचनाकार को दृष्टि प्राप्त होती है। सिर्फ अनुभव का भोग या भोग हो जाना साहित्य की गारंटी कतई नहीं। साहित्य में जगहित, समाजहित, लोकहित भी एक बात है। अपने क्लासिक से दो उदाहरण देना चाहूंगा, एक सीता का दूसरा द्रौपती का। कैसे महाकवि ने न सिर्फ मानवीय बल्कि स्त्री गरिमा बचा कर एक सशक्त संस्कृति का निर्माण किया।

और ये संभव हुआ रचनाकार के सिर्फ द्रष्टा होने के कारण।

साहित्य की दृष्टि क्या है ? अर्थात् रचनाकार कैसे अपने समय को देखे, परखे और लोकहित में अपनी रचना प्रस्तुत करे ?

सीता अशोक वाटिका में कैद है। राम सीता के निजी जीवन और शरीर में बलात् प्रवेश करना चाहता है। रामायण पर आधारित इस प्रसंग पर कवियों ने अपने–अपने दृष्टि से सीता के शील की रक्षा की है। यहां सवाल सीता के शील से अधिक उस लोकमंगल की भावना से है जिसके लिए साहित्य रचा जाता है। अतः हर कवि/रचनाकार के समक्ष एक चरित्र/घटना ही नहीं, वे तमाम पाठक होते हैं जिनके लिए रचनाकार रचनारत् रहता है। उसके शील का क्या होगा ? लोकमंगल ? क्या वो चाहेगा कि सीता का शील भंग हो जाए या भरी सभा में द्रौपती नंगी हो जाए ?

यथार्थ ?

ऐसे वक्त में उस यथार्थ को कौन देखना समझना चाहेगा कि द्रौपती नंगी हो गयी और तब आगे उसकी नग्नता का वर्णन भी हो।

क्या कोई ऐसा यथार्थ देखना चाहेगा ? स्त्री न्यूडिटी पे तो बड़े–बड़े कलाकारों ने काम किया है, चित्र, मूर्ति, फोटोग्राफी, साहित्य, कविताएं इत्यादि। पर क्या इस तरह की नग्नता जो हमारे मनुष्य होने को ही खारिज कर दे !

जाहिर है इस प्रसंग में कुछ और कहना उचित नहीं। फिलहाल, महाकवियों ने द्रौपती और सीता– दोनों के शील की रक्षा की। सीता ने भूमि से मात्र तिनके को उठाकर अपनी ओर बलात् बढ़ते रावण को रोका। सावधान ! अपनी सीमा का

उल्लघंन करते एक मर्यादित स्त्री का ताप तुम्हे भस्म कर देगा, रावण!

सिर्फ एक तिनके का सहारा! और त्रिलोक विजयी रावण ठिठक जाता है।

क्या ये घटना मात्र घटना या प्रसंग लगती है ? एक शीलवान स्त्री द्वारा तिनके मात्र से बलशाली, अमर रावण के पांव ठिठका देता है।

महाकवि की इस सांस्कृतिक गरिमा चरित्र सम्पन्न दृष्टि के समक्ष नमन !

उसी तरह भगवान का सहारा ले (वहां बहन अपने भ्राता को कातर हो पुकारती है) द्रौपती अपने शील की रक्षा करती है।

यहां इन प्रसंगों को इसलिए उठाया गया है कि साहित्य में दृष्टि होती क्या है। हम अपनी सोच को एकदम साफ करना चाहेंगे कि सिर्फ भोगना, भोक्ता बनना और इसे लेखबद्ध कर प्रमाणित साहित्य मानना एकदम भ्रामक है। बहुत से रचनाकार (तथाकथित) दलित जीवन भोगकर अपने अनुभव को आधार बताकर रचनाएं लिखे हैं। खूब लिखें गये हैं–फिर भी प्रेमचंद ने कफन, सद्‌गति या ठाकुर का कुआं या अपने उपन्यासों में जिस साहित्यिक दृष्टि सम्पन्न चरित्र पैदा किए हैं –वे उल्लेखनीय हैं। आप सवाल उठाते रहे कि प्रेमचंद ने तो इसे जिया ना भोगा, फिर प्रमाणित कैसे। तब तो हमें दुनिया के सारे महाकाव्यों को नदी में बहा देना चाहिए क्योंकि राम–रावण युद्ध, द्रौपती के चीरहरण वक्त महाकवि कहां बैठे थे। ना उन्होंने देखा ना भोगा !

और अंत में इसी दृष्टि (रचनाकार की) को और साफ करते हुए लोकप्रिय पात्र हनुमान (हनुमान जी को साहित्यिक /पौराणिक पात्र ही कहना चाहूँगा) का एक प्रसंग बताकार लेख समाप्त करना चाहूंगा। गौर करेंगे –इस प्रसंग में ऊपर की तमाम बहस का निचोड़ है, निजी अनुभव, व्यक्ति, समष्टि ...... भोगा यथार्थ .... इत्यादि !

हनुमान जी को पता चला कोई पंडित बड़े रोचक ढंग से राम–कथा का वाचन करते हैं। हनुमान ठहरे रामभक्त, श्रवण करने पंडित जी के आश्रम पहुँच गये। श्रोताओं के बीच जा बैठे और कथा–रस का आस्वाद लेने लगे। हनुमान जी ने वेश बदल रखा था। वाचन के दौरान अशोक वाटिका के दृश्य का वर्णन आया। पंडित जी ने कहा वहां फूलों की श्रृंखलाएं लगीं थी। सफेद फूल।

हनुमान को खटका – अरे! यहां आकर तो पंडित जी गड़बड़ा गये – फूल सफेद नहीं लाल थे।

उठकर उन्होंने क्षमायाचना करते हुए पंडित जी को फूलों के असली रंग के बारे में बताया। वे लाल थे। मगर पंडित अड़े रहे। उधर वेश बदले हनुमान जी अड़ गये नहीं वे फूल तो लाल ही थे।

वाद बढ़ते देख आखिरकार हनुमान ने अपना वास्तविक रूप लिया और कहा–मैं स्वयं साक्षी था श्रीमान् ! मैं हनुमान हूँ।

लोग स्तब्ध। अब तो पंडित जी को स्वीकार कर ही लेना चाहिए कि फूल लाल थे। फिर भी पंडित जी मुस्कुराते हुए अपनी बात पे अड़े रहे और स्पष्ट किया – हनुमान ! ये सत्य है कि आपको वे फूल लाल दिखे, क्योंकि अशोक वाटिका में सीता की दुर्दशा देख आपके नेत्रों में रक्त उतर आया था इसलिए सफेद फूल भी आपको लाल ही दिखे!

अब और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। हनुमान स्वयं भ्रमित थे – क्या हुआ! दृष्टि किसी और के पास थी।

हम सब देखते हैं खूब देखते हैं रोज ही देखते हैं, स्वयं को और दुनिया को भी अर्थात् भ्रमित हैं। पेड़ से आम या सेब गिरते भी सभी ने देखा–मगर न्यूटन ने उसमें कुछ और देखा। दृश्य को दृष्टि बनाना द्रष्टा का काम है। आज हिन्दी साहित्य में विजन (दृश्य) तो सबके पास है मगर दृष्टि ?

तिनके का सहारा हम सिर्फ मुहावरे के लिए जानते हैं – पर इसे संस्कृति का रूप देना सिर्फ एक द्रष्टा का काम है।

बस्तर पाति फीचर्स

लघुकथा

मीटिंग

वर्षा रावल
फ्लैट नंबर–40, ब्लॉक नंबर–3, अवनि बिहार
शंकर नगर
रायपुर, छ.ग.
मो.–09977237765

मीटिंग हो रही थी एक बगीचे में, ऑफिस की खडूस और भ्रष्ट बॉस के खिलाफ मोर्चा खोलने की तैय्यारी थी, सारी चीज़ें तय कर ली गई थी ...ठोस निर्णय लेकर सब चले गए अपने अपने घर..... निशा को कुछ काम था सो ऑफिस पहुंच गई और सीधे पहुंची मैम के चेम्बर में।

''में आई कम इन मैम...?''

''अरे आओ निशा...।''

''वाव मैम! क्या गज़ब लग रही हैं आप, आपका ड्रेसिंग सेन्स ना सच क्या कहूँ.। आज भी कितने दीवाने डोलते होंगे।'' निशा का एक एक शब्द रूह में उतरता जा रहा था।

''चलो वो तो ठीक है अब ये बताओ क्या हुआ मीटिंग में ?''मैंम बेचैन हो उठीं......।

''बताती हूँ..।'' कहकर निशा चेम्बर का दरवाज़ा अंदर से बन्द कर रही थी....।

एक मुलाकात : ख़ुदेज़ा ख़ान

'एक मुलाकात' व 'परिचय' श्रृंखला में इस पिछड़े क्षेत्र से जुड़े हुए और क्षेत्र के लिए रचनात्मक योगदान करने वाले व्यक्ति के साथ बातचीत, उनकी रचनाओं की समीक्षा, उनकी रचनाएं और उनके फोटोग्राफ अपने पाठकों के साथ साझा करेंगे।

खुदेजा खान यही नाम है उनका जो अब तक रचनारत हैं और कोई उन्हें जानता भी नहीं। न जाने कब से उनका मन कविता रचने को कर रहा था और वे लिख भी रहीं थीं पर प्रचार प्रसार से दूर, आत्मसंतोष से भरपूर। क्या नहीं सोचा उन्होंने, क्या नहीं देखा उन्होंने; समस्त सामाजिक सरोकारों से लगातार जुड़कर रचनारत रहीं। वर्तमान में साहित्य के विषयों का फैलाव इस कदर बढ़ा है कि हर कोई हर दिशा में बढ़ नहीं पाता है, परन्तु खुदेज़ा जी ने आगे बढ़कर कलम चलाई है। विषयों को नहीं छोड़ा वहां तक ठीक था, विधाओं पर भी कब्जा जमाया है। कविता, कहानी, लघुकथा, गीत, आलेख, ग़ज़ल, नज़्म, सभी पर अपना अधिकार रखती हैं। फिलहाल उनके दो संग्रह आ चुके हैं, एक ग़ज़ल संग्रह–सपना सा लगे और दूसरा कविता संग्रह–संगत। मैंने उनसे साहित्य से जुड़े विभिन्न संदर्भों पर बात की और उन्होंने बेबाक जवाब दिया। आइये हम सभी उनके विचार जानकर उन्हें समझने का प्रयास करते हैं।

सनत जैन–आप साहित्य की किस विधा को अपने लिए अनुकूल मानती हैं ? क्या उसी विधा ने आपकी अपनी पहचान बनायी हैं ?

खुदेजा खान–मेरे लेखन की शुरूआत कविता, शेर ओ शायरी से हुई। पहला संग्रह ग़ज़ल का था तो दूसरा कविता का। साथ–साथ में लघु कथाएं, कहानी, नाटक आदि भी लिखती रही। पहचान तो शायद पद्य यानि ग़ज़ल/कविता ने ही बनायी होगी। लेकिन अब मेरा गद्य की तरफ रूझान बन रहा है। संभवतः इसका कारण उम्र, अनुभव, परिस्थिति, समय आदि हो सकते हैं या फिर मेरी मानसिकता में उतरते–चढ़ते परिवर्तन। ये सभी विधाएं मुझे अपने अनुकूल लगती हैं तभी तो इन सभी में सहजता पूर्वक लिख पाई।

सनत जैन–क्या वर्तमान परिवेश साहित्य के अनुकूल है ?

खुदेजा खान–बढ़ती टेक्नॉलाजी, इलेक्ट्रानिक मीडिया के बढ़ते प्रभाव को देखते हुए लगता है कि पठन–पाठन की प्रवृत्ति में कमी आई है, जिन्हें साहित्य से गहरा लगाव है केवल वे ही पढ़ने में रूचि रखते हैं वरना तो आजकल घर–घर में टी.वी. सीरियल और हिन्दी सिनेमा ही हावी दिखाई देता है। जब पका–पकाया माल एक बटन दबाते सामने प्रस्तुत हो जा रहा हैं तो पुस्तक बढ़ने का कष्ट कौन उठाये ? ये तो लेखक, साहित्यकार ही हैं जिन्होंने साहित्य को ज़िन्दा रखा हुआ है।

सनत जैन–क्या साहित्य में गॉडफॉदर का होना ज़रूरी हैं ?

खुदेजा खान–गॉडफॉदर अगर हो तो अच्छा है, वो सही दिशा में आगे बढ़ने का मार्गदर्शन करके हमारे मार्ग को प्रशस्त कर सकता है। अन्यथा 'ऐकेला चलो रे' की धारणा बुरी नहीं।

सनत जैन–साहित्य का वर्तमान मूल्यांकन क्या कहता है ?

खुदेजा खान–भूत, वर्तमान या फिर भविष्य हर युग में अच्छा/उत्तम साहित्य सराहा गया है। वर्तमान में भी जो मौलिक रचेगा, अपना सर्वश्रेष्ठ उसका मूल्यांकन अवश्य होगा।

सनत जैन–साहित्य के कब तक जिन्दा रहने की संम्भावना है ?

खुदेजा खान– जब तक हम हैं यानी मनुष्य है, मानवता है साहित्य जीवित रहेगा। अलबत्ता ये हो सकता है आने वाले युगों में काग़ज–क़लम, पुस्तकों की जगह इन्टनेट, मोबाइल सॉफ्टवेयर में, हार्ड हिस्क में साहित्य का पूरा संग्रह हो। लोग सिनेमा की तरह अपनी डिवाइस में कहानी, कविता देखें–पढ़ें–सुनें।

सनत जैन–क्या साहित्य में सफलता के लिए किसी विशेष गुट से जुड़ा होना ज़रूरी है ?

खुदेजा खान–जैसा कि हम सभी जानते हैं 'प्रगतिशील लेखक संघ', 'जनवादी लेखक संघ,' 'हिन्दी साहित्य परिषद', 'राजभाषा आयोग' एवं अन्य साहित्यिक संस्थाएं लेखकों को जोड़ने और साहित्यिक गति–विधियों का माध्यम रहीं हैं। गुटबाजी ठीक नहीं लेकिन निष्ठा पूर्वक किसी गुट (यदि हम संस्थाओं को एक गुट का नाम दें तो) के साथ जुड़कर सही अर्थों में साहित्य कर्म करें तो इसमें लेखक और साहित्य दोनों की भलाई है।

सनत जैन–साहित्य में लगातार छपने वाला ही साहित्य सुधि है या गुमनाम लेखक ?

खुदेजा खान–जो भी साहित्य सृजन कर रहा है या सतत् लेखन कर्म में रत है तो मेरी नज़र में वो एक साहित्य सुधि है चाहे वो एक गुमनाम लेखक हो। वैसे भी लगातार कुछ भी लिखकर छपवाते रहना या छपते रहने का क्या औचित्य है।

सनत जैन–वर्तमान साहित्य, वर्तमान का सही ढंग से दस्तावेजीकरण कर पा रहा है ?

खुदेजा खान–वर्तमान आधुनिक समय में जबकि टेक्नॉलाजी अत्यधिक विकसित हो चुकी है, दस्तावेजीकरण सरल–सुगम

हो गया है। साहित्य मुखरित हुआ है।

सनत जैन—सदा ही मुख्य अतिथि, विशिष्ट बनने वाला ही सच्चा साहित्यकार है ?

खुदेजा खान—जो सच्चा है, वो अच्छा हो ये ज़रूरी नहीं और जो अच्छा है वो सच्चा भी हो ये भी हमेशा सही नहीं होता। अतः मुझे तो इसमें संदेह ही लगता है।

सनत जैन—साहित्य लिखा किस लिए जाता हैं ?

खुदेजा खान—यूँ तो साहित्य के समाज का दर्पण कहा जाता है, लेकिन ये कटु सत्य है कि जिस समाज को हम ये दर्पण दिखाना चाहते हैं उस आम जन—मानस को साहित्य से कोई लेना—देना नहीं। साहित्य व पठन—पाठन में रूचि रखने वालों तक ही साहित्य सीमित है।

सनत जैन—एक ओर तो साहित्य से समाज को बदलने के दावे किये जाते हैं और दूसरी ओर प्रकाशन, संपादन और लेखन से जुड़े बहुत से लोगों का चरित्र संदिग्ध होता जा रहा है, ये कैसा साहित्यिक प्रभाव है ?

खुदेजा खान—ये ऐसे संदिग्ध लोगों का, साहित्य पर दुष्प्रभाव है। जहाँ तक साहित्य से समाज बदलने का दावा है वो इस बात पर निर्भर करता है कि समाज किस स्तर तक साहित्य से जुड़ा है। लेखन, संपादन, प्रकाशन आदि जब व्यवसाय का रूप ले लें तो पारदर्शिता बनाये रखना कठिन हो जाता है और संदिग्धताएँ जन्म लेती हैं।

सनत जैन—पुस्तकें छपना साहित्यकार का दर्जा किस तरह बढ़ाता है।

खुदेजा खान—किसी भी साहित्यकार की पुस्तक छपना रचनाकार के लिए एक उपलब्धि होती है। लेकिन पुस्तक साहित्यिक कसौटी पर कितनी खरी उतरती है इसका निधारण पाठक व लेखक तय करते हैं और इसी आधार पर साहित्यकार का दर्जा बढ़ता है। केवल पुस्तकें छपवाने से नहीं।

सनत जैन—सुविधाओं के बीच रहकर जो साहित्य रचा जाता है, क्या वह आम लोगों का साहित्य हो सकता है ?

खुदेजा खान—क्यों नहीं साहित्य तो संवेदना की भावभूमि पर उपजता है। सुविधा में रहकर भी यदि हमारे अन्दर पीड़ा की तीव्र अनुभूति है तो आम जन—मानस के दर्द को महसूस कर लिख सकते हैं।

सनत जैन—अध्ययन से साहित्य रचा जाता है या फिर ईश्वर प्रदत होता है ?

खुदेजा खान—किसी भी विधा/कला के प्रति सम्मान जन्मजात भी होता है तथा उसे अपनी अभिरूचि अनुसार अध्ययन से भी निखारा जा सकता है। यदि मैं अपनी बात करूँ तो मेरे अन्दर लिखने पढ़ने की प्रवृत्ति बचपन से ही थी जो आगे चलकर साहित्य लेखन व पठन की ओर अग्रसर हो गई।

सनत जैन—पुराने लोगों द्वारा रचित साहित्य पढ़ने से किस तरह ज्ञान वृद्धि होती है ?

खुदेजा खान—पुराने लोगों द्वारा रचित साहित्य पढ़ने से निःसंदेह ज्ञान की वृद्धि होती है। बीते हुए समय का कालखण्ड, परिवेश, आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों का अवलोकन सभी कुछ हमें बीते हुये साहित्य को पढ़कर ज्ञात होता है। वरना हम अपने अतीत से वंचित ही रह जाएं।

सनत जैन—पुराने साहित्यकारों का नये साहित्यकारों के प्रति क्या योगदान हो सकता हैं ?

खुदेजा खान—सबसे बड़ा योगदान तो ये होगा कि वे नये साहित्यकारों का उत्साहवर्धन करें। नये लेखकों की जिस विधा में रूचि हो उसे निखारने में उसकी मदद करें, मार्गदर्शन दें।

सनत जैन—पत्रिका/पुस्तक विमोचन के पश्चात् उसे आमंत्रित लोगों के बीच मुफ़्त में बांटना उचित है ?

खुदेजा खान—मुफ़्त में मिली हुई चीज की क़द्र नहीं होती, मुफ़्त में बांटने से शायद लोग उसे पढ़ें भी न, फिर कृति का मूल्यांकन होना तो दूर की बात। आख़िर जो भी अपनी पत्रिका/पुस्तक छपवा रहा है अपने आर्थिक योगदान से ही छपवा रहा है ऐसे में लेखक को भी आर्थिक सहयोग मिलना अपेक्षित है।

सनत जैन—साहित्यिक योगदान में मात्र रचना ही होता है या फिर पढ़ना, पढ़ाना ?

खुदेजा खान—पढ़ना तो परिष्कृत होने के समान है। स्थान ही अपनी रचनाओं या कृतियों का सर्कुलेशन ज़रूरी है जितने लोगों तक कोई रचना पहुँचेगी उतनी उसकी चर्चा या कहें समालोचना/आलोचना होगी और ये किसी भी लेखक के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

सनत जैन—हम साहित्य के विस्तार में किस तरह से योगदान दे सकते है ?

खुदेजा खान—योगदान देने के कई माध्यम हैं— प्रिंट मीडिया, साहित्यिक गोष्ठियाँ एवं आयोजन, परिचर्चा आदि। इसके लिए इस क्षेत्र से जुड़े लोगों को एक जुट होकर काम करना होगा।

सनत जैन—साहित्य के किन कारणों से अवमूल्यन हो रहा है ?

खुदेजा खान—इलेक्ट्रॉनिक मीडिया आज सर चढ़कर बोल रहा है। पहले के मुकाबले आज मनोरंजन के अनेक साधन

उपलब्ध हैं। नई पीढ़ी किताबों में सर खपाने के बजाय एक क्लिक करके कम्प्यूटर, मोबाइल में वो सब कुछ देख लेना पसंद करती है जो ज्ञान हमें किताबों के गहन अध्ययन से प्राप्त होता है। आज तीव्रगामी जीवन में जब समयाभाव की स्थिति है – तत्काल मनोरंजन और आनन्द के लिए लोग गम्भीर साहित्य के बजाय हल्की–फुलकी मनोरजंनात्मक चीज़े पसंद करने लगे हैं अब चाहे वो स्तरहीन हों या अश्लील।

सनत जैन–मात्र कविता लिखना साहित्य है या अन्य विधाओं से जुड़ना चाहिए ?

खुदेजा खान–केवल कविता साहित्य कैसे हो सकती है। साहित्य वृहद एवं व्यापक है। ये अलग बात है कि कोई लेखक पद्य में पारंगत है कोई गद्य में।

सनत जैन–कठिन शब्दों में कविता बुनने का दौर है अथवा ख़तम हो गया ?

खुदेजा खान–दौर तो कठिन और सरल शब्द दोनों का ही है। असल बात ये है कि आप जिस भी शब्द में अपने भावों की अभिव्यक्ति कर रहे हैं वे सम्प्रेषणीय एवं अर्थपूर्ण हैं कि नहीं..... ?

सनत जैन–मंच पर किन्हें स्थान देना चाहिए–ज्ञाता, साहित्य से जुड़े बुजुर्ग अथवा नेता, अफसर को ?

खुदेजा खान–मंचासीन होने के लिए इनमें से कोई भी व्यक्ति हो सकता है लेकिन उसके लिए पहली शर्त ये है कि वे साहित्यानुरागी हो, ज्ञान से परिपूर्ण हो तभी तो वो लेखक – पाठक के अर्न्तसम्बंधों को समझ पायेगा।

सनत जैन–किसी भी साहित्य पत्रिका के संपादन की योग्यता क्या होनी चाहिए ?

खुदेजा खान–पूर्णतः साक्षर होना तो अनिवार्य ही है। साहित्य में गहन रूचि, अध्ययन की आदत, जागरूकता, सजगकता, उत्तरदायित्व के प्रति समर्पण आदि गुण संपादन की गुरू गम्भीर भूमिका की बुनियाद हैं।

सनत जैन–साहित्यकार अपने जीवन में क्या करता है और वह क्या रचता है, क्या दोनों में तारतम्य होना ज़रूरी है ?

खुदेजा खान–मेरे हिसाब से तो ज़रूरी है। कथनी और करनी में अन्तर व्यक्ति के दो–मुँहे आचरण को प्रदर्शित करता है। आप जब समाज में किसी कला विशेष के क्षेत्र में उभरकर सामने आते हैं तो आपकी नैतिक ज़िम्मेदारी और भी बढ़ जाती है।

सनत जैन–ग़ज़लें अब अपने विषय बदल रहीं, पहले और आज भी शराब व शबाब में डूबी रहती हैं, क्या यह परिवर्तन ज़रूरी है ? और यह परिवर्तन समय के कारण है या फिर ग़ज़लकारों की कमज़ोरी है ?

खुदेजा खान–ग़ज़लें अब शराब व शबाब के दायरों से निकल कर काफी आगे आ गईं हैं । परिवर्तन समय की मांग है। जैसे ठहरा हुआ पानी गंदला हो जाता है मगर बहता हुआ पानी उतना ही स्वच्छ व निर्मल होता है, ऐसे ही ग़ज़लों ने भी अपना स्वरूप बदला है। व्यापक रूप से समसामयिक विषयों को अपने अन्दर समेटा है। पहले दरबारी शायर हुआ करते थे। मुग़लकाल से लेकर अब तक समय ने बहुत करवट बदले हैं ऐसे में कोई गज़लकार इन बदलावों से कैसे अछूता रह सकता है। यही कारण है कि आज ग़ज़ल में हम अपने समाज और दुनिया की हक़ीकत को देखते–सुनते हैं।

सनत जैन–मंचीय कवि और साहित्यिक कवि में क्या अन्तर है ?

खुदेजा खान–मंचीय कवि को दर्शकों के मनोरंजन का ख़्याल रखते हुए अपनी प्रस्तुति देना पड़ती है। इसीलिए मंच पर हास्य–व्यंग्य व हल्की–फुल्की रचनाएँ अधिक पसंद की जाती हैं जबकि साहित्यिक कवि चिंतन–मनन व दर्शन के साथ खुद को गम्भीरता के साथ अभिव्यक्त करता है।

सनत जैन–व्यंग्य और हास्य में क्या अंतर है ?

खुदेजा खान–व्यंग्य में वास्तुस्थिति पर गहरे कटाक्ष के साथ प्रहार होता है। व्यंग्य में हास्य का पुट भी हो सकता है जिससे रचना में एक चुटीलापन आता है। हास्य में परिहास के माध्यम से अपनी बात कही जाती है इसमें द्विअर्थी संवादों का भरपूर उपयोग होता है। हास्य में आनंद ही सर्वोपरि होता है।

सनत जैन–क्या वास्तव में सफल महिला साहित्यकार होने के लिए परिवार नामक संस्था से दूर रहना आवश्यक है ?

खुदेजा खान–कदापि नहीं। ऐसा करना तो परिवार के लिए ही नहीं अपने प्रति भी अन्याय होगा। कई परिवारों में जहाँ महिलाओं को परिवार वाले सहयोग नहीं करते तब स्थिति अवश्य कष्टप्रद हो जाती है अन्यथा परिवार में रहकर कोई भी महिला लेखिका साहित्यपूजन कर सकती है।

सनत जैन–हर सफल व्यक्ति के पीछे उसकी पत्नी होती है, कैसा होता है उसका योगदान ?

खुदेजा खान–पत्नी को तो यूँ ही अर्द्धागिंनी कहा गया है। पत्नी के योगदान के बिना सफलता कहां सम्भव है.......घर......परिवार पत्नी सम्भालेगी तभी तो पुरूष निश्चित होकर अपना काम कर पायेगा। किसी भी पत्नी का योगदान, पति का सम्बल होता है। हर प्रतिकूल परिस्थितियों में आत्मबल

देते हुये जीवन के कुरूक्षेत्र में अग्रसर होने की प्रेरणा पत्नी द्वारा ही मिलती है।

सनत जैन—हर सफल व्यक्ति के पीछे उसकी पत्नी होती है तो सफल महिला साहित्यकार के पीछे कौन होता है ?

खुदेजा खान—सफल महिला साहित्यकार के पीछे स्वयं महिला होती है। कोई भी महिला क़लम तभी उठाती है जब उसके अन्दर अर्न्तचेतना जागृत होती है। ये बहुत कुछ उसके पालन—पोषण और वातावरण पर निर्भर करता है और लेखन तो सदैव संवेदना की भावभूमि पर ही उपजता है।

सनत जैन—संपादकीय के विषय क्या होने चाहिए, समसामयिक घटनाएँ, साहित्य से सम्बन्धित या फिर सामाजिक समस्याओं पर ?

खुदेजा खान—ये सभी विषय एक संपादकीय में होने चाहिये क्योंकि समसामयिक घटनाएँ हों या साहित्यिक उठा—पटक या फिर सामाजिक समस्या ये सभी विषय एक दूसरे से कहीं न कहीं जुड़े हुए हैं। घटनाएं हमारे आस—पास समाज में ही घटित होती हैं और इन्हीं समस्याओं पर साहित्य केन्द्रित होता है। तभी तो साहित्य को 'समाज का दर्पण' कहा गया है।

सनत जैन—किसी भी पत्रिका में छपने के लिए रचनाएं भेजना कहां तक उचित है ?

खुदेजा खान—नवोदित रचनाकारों को तो अपनी रचनाएं भेजना ही पड़ेंगी तभी उनका मूल्यांकन हो पायेगा जब वे स्थापित हो जाएं तब अलबत्ता संपादक उनसे रचनाएं मंगवा सकते हैं।

सनत जैन—सुरेन्द्र मोहन पाठक...... आदि द्वारा रचे गये उपन्यास साहित्य हैं या नहीं, हैं तो क्यों हैं ? नहीं हैं तो क्यों नहीं हैं ?

खुदेजा खान—सुरेन्द्र मोहन पाठक...... आदि जैसे उपन्यास 'पल्प फिक्शन' कहलाते हैं जिनमें केवल रहस्य, रोमांच, हत्या, प्रतिशोध, प्रेमातिरेक आदि का मनोरंजनात्मक ढंग से अतिरंजनापूर्ण वर्णन किया जाता है जिनमें भाषा विज्ञान या साहित्यिक शैली का कोई मापदण्ड नहीं होता 'ऐसे में इसे साहित्य तो कहा नहीं जा सकता। ये केवल लोगों की रूचिनुसार मनोरंजन करने के लिहाज़ से किया गया लेखन कर्म है।

सनत जैन—कहानी, व्यंग्य, कविता, तीनों में कौन शक्तिशाली है ? किसी मारक क्षमता ज़्यादा है ?

खुदेजा खान—कहानी, व्यंग्य कविता तीनों की अपनी अलग महत्ता है। किसी को कहानी बहुत अच्छी लगती है तो कोई व्यंग्य का दीवाना होता है, कविता सुनने—गुनने वालों की भी कमी नहीं। जहां तक व्यंग्य की बात है इसकी मारक क्षमता अधिक होती है क्योंकि व्यंग्य के माध्यम से कही गई बात चुमती भी और वार भी करती है, एक तीर से दो निशाने साध ाती है।

सनत जैन—क्या उम्र के साथ लेखन में परिपक्वता आती है, या ये जुमला यूं ही उछाला गया है ?

खुदेजा खान—उम्र के साथ लेखन में परिपक्वता आती है। जब अनुभव में बढ़ोतरी होती है, वास्तविकता धरातल पे जीवन के यथार्थ का सामना करना पड़ता है, व्यवहारिक व सामाजिक ज्ञान में वृद्धि होती है तो स्वतः लेखकीय धार को बल मिलता है। शेष लेखकीय क्षमता पर भी निर्भर करता है कि वह किस प्रकार अपने लेखन का परिमार्जन करता है।

सनत जैन—साहित्यिक कार्यक्रमों में होने वाले ख़र्चों की पूर्ति कैसे हो ? सरकारी मदद से अथवा आपसी कलेक्शन से ?

खुदेजा खान—सरकारी मदद मिलना आवश्यक है। आर्थिक पक्ष मज़बूत होगा तभी कार्यक्रम सफल होगा। साहित्य सेवी एवं लेखकों के लिए आर्थिक सहयोग ज़रूरी है। एक निश्चित अनुदान, राशि के रूप में साहित्यिक समारोह के लिए मिलना चाहिये। आज भी लेखक, साहित्यकारों की स्थिति आर्थिक रूप से उतनी सुदृढ़ नहीं हो पाई है जिसके हक़दार वे हैं।

सनत जैन—स्त्री अपने एंगल से अपने यथार्थ को क्यों नहीं लिखती ? वो पुरूषों के द्वारा बताए गये यथार्थ को सच क्यों मान लेती है ?

खुदेजा खान—स्त्री अपना ही भोगा यथार्थ लिखती है।लेकिन उसे पुरूष प्रधान समाज में पुरूष द्वारा बताया गया या पुरूष द्वारा निर्धारित किये गये मानदंडों के अनुरूप मान लिया जाता है। यही तो विडम्बना है।

स्त्री का यथार्थ क्या है? ,जबकि उसका अस्तित्व ही पुरूष के बाद आता है या उसके बिना उसे सम्पूर्ण ही नहीं माना जाता। नारी ही पुरूष को जन्म देती है, लेकिन नाम बीजारोपण करने वाले का होता है फल देने वाले वृक्ष का नहीं ,,,,,,,,,,,,मतलब बीज महत्वपूर्ण है, फल या वृक्ष नहीं लेकिन सवाल फिर पैदा होता है कि फल से ही बीज उत्पन्न होता है और बीज से ही फिर फल । जब दोनों का ही सहअस्तित्व तो पक्षपात क्यों,,,,,,? कोई एक कम और दूसरा ज़्यादा क्यों ? समानता, समभाव क्यों नहीं। बस सारा मामला इसी एक बिन्दु पर आकर ठहर जाता है और ठहरा ही हुआ है। स्त्री जब कुछ लिखती है तो वो केवल स्त्री का न होकर स्वमेव पुरूष के साथ घुलमिल जाता है। सृष्टि के एक ही सिक्के के दो पहलू हैं स्त्री और पुरूष इन्हें अलग नहीं किया जा सकता।

ख़ुदेजा ख़ान के ग़ज़ल संग्रह 'सपना सा लगे' की ग़ज़लें

चलो ये सिलसिला भी ख़तम हुआ।
वक्त का इतना—सा मुझपे क़रम हुआ।।

एक सन्नाटा छा गया ज़ेहनो—दिल में,
ख़्वाब टूटने का, जैसे कोई भरम हुआ।।

न कहने को कुछ रहा, न सुनने को,
ऐसा भी कभी, दिलकश सितम हुआ।।

एक पल में रंगी हो गई सारी दुनिया,
वो हम—नशीं जब मेरे, हम—कदम हुआ।।

दिल ख़ाली बेजान, बेआवाज हो गया,
बाकी न रहा कुछ, वाक्या जिस दम हुआ।।

ए! दिल तू गहरा है समन्दर के जितना।
तेरी थाह न उसने पाई डूबा अंदर जितना।।

क्या शै है इसके अंदर, सारे जहां का प्यार बसा,
कोई न जाने क्यों प्यार है, दिल के अंदर इतना।।

होश यहां उड़ रहे, जुनून हद से बढ़ रहा,
अन्दाज़ा मगर नहीं होता, है जोश वहां पर कितना।।

दिल में जिसके प्यार हो रूह जिसकी पाक हो,
मिला उसे अपने आलम में, ओहदा सिकन्दर जितना।।

है ज़िन्दा अपनी मिट्टी में प्यार—वफ़ा की रस्में,
ये ख़ुश्बू, ये जज़्बा, नहीं कहीं पर इतना।।

थक के हार जायें, ऐसे तो हम नहीं।
दुनिया सितमगर सही, मगर कोई ग़म नहीं।।

नाजुक से रिश्तों में तल्खियां हैं बहुत,
कड़वी मय पीने का, जैसे लुत्फ कम नहीं।।

दिल लुभाता है वही, दिल जलाता है वही,
क्या कहूं ज़ख़्मों का मेरे, उसके सिवा मरहम नहीं।।

नाजुक से दिल में पत्थर के इरादे रखते हैं,
हो जाय छलनी जिगर, आंख मगर नम नहीं।।

ठेस भी लगी दिल को, तक़रार भी हुई तो क्या,
अदावत भी है लेकिन, दिल की लगी कम नहीं।।

बिखर बिखर के टूट गया, मेरा वजूद फिर भी,
इस तरह जुड़े हैं कि, वो नहीं तो हम नहीं।।

कौन कहता है, एक उम्र तमाम हो जाये।
बस इतना हो कि दुआ—सलाम हो जाये।।

जरूरत क्या दिल को बिस्मिल करने की,
जब एक नज़र से ही काम हो जाए।।

बाद मुद्दत के ऐसी शाम आई फिर से,
वक़्त का हर लम्हा उनके नाम हो जाए।।

इतनी इनायत न हुई, रूसवाई के डर से,
कहीं ऐसा न हो, बेवजह बदनाम हो जाए।।

साज़ उठा तो लिया, वो तड़प कहां है मगर,
ऐसा नहीं होता, हर कोई खैय्याम हो जाए।।

ज़िक्र छेडेंगे, याद करेंगे वो गुज़रे ज़माने
होंगी गुफ्तगू चलो दौर—ए—जाम हो जाए।।

ख़ुदेजा ख़ान के कविता संग्रह 'संगत' की समीक्षा

काव्य संग्रह ''संगत'' (खुद्‌जा) का भावात्मक विवेचन

मधु जैन परवेज़
16—महावीर नगर
आइसेक्ट कंप्यूटर के सामने
धरमपुरा, जगदलपुर—494001
मो.—9425259262

खुदेजा जी के दूसरे कविता संग्रह को पढ़कर प्रतिक्रिया व्यक्त करने का अवसर पुनः प्राप्त हुआ। रायसेन, म.प्र. मे 12 नवम्बर को जन्मी खुदेजा जी का प्रथम ग़ज़ल संग्रह ''सपना सा लगे'' जनवरी वर्ष 2001 में प्रकाशित हुआ था।

राष्ट्रीय मुशायरे में हिस्सेदारी के साथ आकाशवाणी और दूरदर्शन के विविध प्रसारण कार्यक्रमों में भागीदारी और सृजनकार्यों में जुड़ी है खुदेजा जी। वर्षों के अंतराल में आए इस दूसरे कविता संग्रह को पढ़कर यूं लगा मानो इतने वर्षों से प्रकाशन/लेखन से दूर रहकर क्या उन्होंने अपने फन के साथ अन्याय किया या विधा का परिवर्तन, इनकी अभिव्यक्ति में कहीं बाधक बना है। इनकी रचनाओं में आज भी वही सहजता और मौलिक अंदाज है जो उनकी काबिलियत की पहचान दिलाता है। लंबे समय के अंतराल में सामने आया लेखन कार्य, कई अनुभवों, तीक्ष्ण दृष्टिकोण कटाक्ष और जीवनदर्शन को उजागर करता हुआ सा लगा। इस काव्य संग्रह का प्रकाशन, पहले पहल प्रकाशन भोपाल से प्रकाशित है, कुल अस्सी कविताएँ संग्रहित है जिन्हें यदि भावगत आधार पर वर्गीकृत करें तो स्पष्ट किया जा सकता है। जीवन के प्रति वही सहज दृष्टिकोण, अलंकार विहिन भाषा, अपनी ही गति में प्रवाहित कहीं परंपरा को तोड़ती नजर आती तो कहीं जीवन सत्य का उद्‌घाटन करती हुई जीवन अनुभवों ने मानों लेखनी को कटाक्ष करना भी सीखा दिया है। अभिव्यक्तियों में हर नारी को अपनी पीड़ा का अनुभव कहीं लगेगा तो कहीं साझा दुःख, किसी विशेष को समर्पित कविताएँ भी इस संकलन में शामिल है तो कहीं करारा व्यंग्य भी नजर आता है। जीवन के अनसुलझे प्रश्नों को उठाती है तो नैतिक मूल्यों के ह्रास को भी दर्शाती है। और सहज कोमल भावनाएं भी परिलक्षित है और रिश्तों की घुटन भी। कई अहसासों, भावनाओं को पिरोती कविता स्वयं ही खुद को परिभाषित करती है। शीर्षक ''अकुलाई सी'' वाली प्रथम कविता—

कभी कविता स्वतः ही हाथ आ जाती है,
तो कभी एक सिरा भी पकड़ नही आता
खिन्न सी रहती है भीड़ से उकताई सी,
कभी रहती है झुंझलाई सी
अब रूपक अलंकार उसे लगते नही अच्छे,
मनमोहक शब्द जाल उसे लगते नही सच्चे
नई सोच, नए मापदंडो की करती है अगुवाई सी,
रहती है अकुलाई सी...................

इस कविता से ही लेखिका की मनोदशा और नई कविता का अंदाज बयां होता है और सुधिपाठकों को संदेश मिल जाता है पारंपरिक कविताओ, छंद—लयबद्ध कविताओं को इसमें ढूंढने की चेष्टा ना करें। इन कविताओं में भावाभिव्यक्ति की प्रधानता है—शब्दों के महत्व को बड़ी सफाई से प्रतिस्थापित करती हुए, अपना संदेश व्यक्त करने में पूर्णतः सक्षम है। अर्थ पूर्ण कविताओं को श्रेणी देखे तो तो अकुलाई सी, प्रीत की रीत, प्रेरणा, लताएं, धुन, सरल रेखा, आंधियां, अभ्यस्त, विरोधा, संतुलन, जहाँ कविता ही वर्तमान कविता को परिभाषित करती है, वहीं प्रेरणा में अभिव्यक्ति, जीवन में प्रेम का उजास भरकर आंकाक्षाओं को नई सोच, नया आयाम दिया, प्रेम के महत्व के साथ प्रेरणास्त्रोत की व्याख्या करता है। ''सरल रेखा'' और ''संतुलन'' इन दोनों ही कविताओं में साम्यता झलकती है, भ्रम होता है मानो एक है किन्तु दोनों में दो अलग—अलग जीवन दर्शन को बड़ी ही सहजता और खूबसूरती से उकेरा गया है।

चलो अपने अहंकार का आकार घटाकर देखें संतुलन बनाकर देखें (पृष्ठ क्र. 79, संगत)

जीवन को करीब से देखने के बाद लेखक की अंर्तदृष्टि विकसित होती जाती है और वो अपने अनुभव को लेखनी में व्यक्त जरूर करता है। जीवन के प्रति दृष्टिकोण, निहित दर्शन भी अवश्य उसकी रचनाओं में झलकता है। दार्शनिकता से परिपूर्ण उनकी रचनाएं रिश्ते, कशमकश, मैं, तू ही तू, उदासी, अनुभूति, मन, सुबह, रोजीरोटी, सृजन, शून्य, जिंदगी, जज्बा में व्यक्त गहरे भावों को देखें।

प्रतीकात्मक शैली को परिपक्व किया, वही जीवन की विषमताओं के प्रति इनकी कटुता, कटाक्ष के रूप में भी दिखती है। शोषित, प्रताड़ित मन हुंकार भी गर्जित होती दिखती है, मानो प्रतिरोध दर्शा रही हो, आक्रोश फूटा है शब्दों के माध्यम से। इनकी लेखनी ने मौन को भेदा है, मुखरित हुए विचार, कटाक्ष कहीं तो कहीं आत्मविश्वासी तेवर में, दिखाई पड़ते है। ऐसी ही कुछ अनुभूति ''विजेता'' को पढ़कर होती है,

''पूर्वाग्रहों की जकड़न से स्वयं को
विजयी घोषित करने वाले
असल में जीत तुम्हारी नहीं मेरी हुई है'' पृ.क्र. (43) संगत

वैसे ही सत्ता को अस्वीकार करते हुए मन की स्वतंत्रता और शोषक का उपहास उड़ाते हुए कहती है–

''बस इस तन को बनाया बंदी,
खुश हो गए
नहीं सोचा,
इन खुली फिजाओं में,
उड़ते हुए मन को कैसे बंधक बनाआगे...... ?

कुछ औसत कविताएं जैसे– खूब जुड़े कभी टूट गए, पारे–पारे कहां हूं, कुंवारा, कालचक्र आदि है जिन्हें पढ़कर लगता है जल्दबाजी में रचित कविताएं हैं। अंतिम कविता बस्तर की माटी में, संग्रह की सबसे अलग कविता है जिसका विषय स्थानीय है पर संग्रह में शामिल कविताओं से मेल नहीं खाता।

सहज अभिव्यक्ति सरल शब्दों में रची कविताएं मन को छू लेने वाली हैं किन्तु संग्रह को सुगठित बनाने में कहीं तो कुछ कमी झलकती है। कविताओं का क्रम अधिक व्यस्थित करने की आवश्यकता लगी। सतत् लेखन से रचनाकार की अभिव्यक्ति को सौष्ठव निखारता जाता है। अपेक्षा है कि लेखन कार्य की निरंतरता बनाए रखें ताकि समाज की धरोहर पुस्तकें आने वाले युगों में प्रकाश स्तंभ का कार्य करे।

ख़ुदेजा खान रचित लघुकथा

बिकाऊ माल

श्याम लाल ने आंगन में प्रवेशकर दीन दयाल को आवाज़ लगाई – 'दीना कहाँ है रे तू, जरा उस पतुरिया के तो दर्सन करा, जिसे ले जाने की बात कर रहा था तू।'

'हओ इब्बे आया दम तो धर।' कहता हुआ अपनी धोती ठीक करता दीनदयाल बाहर निकला और शुरू हो गया है–'झारखण्ड की है। मेरे घर में दो छोरे जनी। अपनी जोरू से चार छोरियों का बोझ पेले ही सर पे है अब और न चाहूँ मैं। सात हजार में मोल ली थी मैंने। तू यार है अपना एक–दो कम दे देना।'

'पेले माल तो दिखा कि अपनी ही बखानता रहेगा।' श्यामलाल तुनक कर बोला। दीन दयाल ने एक स्त्री को पुकारा–सिर पर ओढ़नी खींचती हुई वो सामने आई। 'देख ले मुझे न लगे कि तू इंकार करेगा'।

श्यामलाल ने पतुरिया का अवलोकन कर आश्वस्त होकर कहा– 'बात तेरी ठीक है......तो इबे तो जाऊँ कि सांझ को दाम के साथ माल देगा ?'

'जैसी तेरी इच्छा, अब वो तेरी माल है, समझो बिक गई।'

बदलते हुए समय में

ऐसा लगता है
सब बदल रहा है
समय की गति
इंसान की मति
मिट्टी की महक
हवा की लहक
पेड़ों की लचक
पानी की चमक
बातों का रस
रिश्तों का सच
जीवन का रंग
अपनों का ढंग।

इन बदलते हुए हालात में
कहीं कोई इच्छा
कहीं कोई आशा
कहीं कोई राग
कहीं अनुराग
कहीं वेदना से उपजी संवेदना।

इनके विविध रंग
ऊर्जा/उत्साह/उमंग
ये रहेंगे सदा संग
जैसे लहू का रंग
सब बदल भी जाये अगर
ये लाल रंग कभी नहीं बदलेगा
सतत् शिराओं में बहते हुए
इस बदलते हुए समय में भी
हमें अपनी जड़ों से जोड़े रखेगा।

ऑटोग्राफ

ऐ! ज़िन्दगी तूने
उम्र के पड़ाव से
गुज़रते हुए
एत्तेफ़ाक़न कभी
दिया था मुझे
अपना एक खूबसूरत ऑटोग्राफ
जैसे कोई हसीन फोटोग्राफ

ख़ामोशियों में रागिनी सा
तारीकियों में रोशनी सा

एक ख़्वाब की सूरत में
दिल की सुर्ख़ दीवारों पे
बिखरे हैं उसके रंग
जैसे छटी इन्द्रिय की तरह
रहे कोई संग।

स्मृतियाँ जो विस्मृत नहीं होती

नर्मदा नदी के तट पर बसा शहर होशंगाबाद। जब पापा के ट्रान्सफर के साथ हम लोग यहाँ आये तो जिस जयसवाल के हाते में, बाबई जाने वाली मुख्य सड़क के किनारे हमारा मकान था उसके सामने दाँयी तरफ जाने वाली सड़क सीधे नर्मदा नदी के किनारे जाकर मिलती थी। सुबह–सुबह बहुत सी महिलाएँ और बच्चे स्नान करने के लिए नर्मदा नदी जाया करते थे, उन्हीं में मैं भी बगल में फ्रॉक दबाये नहाने के लिए नदी चली जाया करती। तैरना नहीं आता था पर भीड़ के साथ डूबने का डर भी नहीं लगता था। ये क्रम निरन्तर जारी था। घर में किसी ने मना नहीं किया कि मैं इन अजनबियों के साथ नहाने क्यों जाती हूँ। इंसानियत बड़ी चीज़ थी। शायद इसलिए असुरक्षा की भावना भी नहीं थी। सभी हिन्दू थे, लौटते में सब हमारे घर में लगे गुलाबी कनेर और अंग्रेजी मोगरे के फूल तोड़कर ले जाते पूजा करने के लिए। घर के मुख्य द्वार के सामने छोटा सा बगीचा था जिसमें एलोवेरा का एक बड़ा सा घना पौधा लगा था। उसमें हम लोगों ने अण्डे के खाली कवच को हर एक शाख पर उल्टा करके लगा दिया था जो देखने पर ऐसा लगता मानो अण्डे का पेड़ हो जैसे अण्डे फल की तरह पेड़ पर लगे हों। ऐसे ही एक बार हम बच्चों की टोली नर्मदा से नहाकर लौट रही थी अचानक मैंने उन बच्चों से कहा– 'इधर आओ तुम्हें एक चीज़ दिखाती हूँ, सभी उत्सुकता से मेरे बगीचे में झांकने लगे। मैंने कहा–'वो देखो अण्डे का पेड़।' कुछ ने विस्मय कहा– अरे! हाँ सच में। कुछ बच्चों ने उत्सुकतावश छूना चाहा तो उनकी माएँ चिल्लायीं– 'अरे, अरे छूना नहीं अभी नहाकर आये हो अपवित्तर हो जाओगे, फिर नहाना पड़ेगा। चलो–चलो घर चलो अण्डे भला पेड़ पर उगते हैं इनके यहाँ मुर्गियाँ पली हैं उन्हीं के अण्डे हैं।' मगर बच्चों को ये बात समझ न आई कि–भला मुर्गियाँ पेड़ पर अण्डे क्यों देने लगीं। कुछ बच्चे तो सच में ये समझते थे कि हमारे घर अण्डे का पेड़ है और हम जब जी चाहे इन्हें तोड़कर खा सकते हैं। मेरी बड़ी बहन अण्डों के इन ख़ाली खोखों पर चित्रकारी कर डालतीं। मतलब तरह–तरह की शक्लें बना देतीं जो देखने में आकर्षक लगतीं।

उस बड़े अहाते में ढेर सारे पेड़ थे– इमली, पीपल, आम, बबूल, आँवला, रीठा, नीलगिरी, बेर, गूलर और भी जाने कितनी छोटी बड़ी झाड़ियाँ। इन सबके बीचों बीच मकान मालिक जयसवाल का घर था। जो हमें किसी भूत बंगले से कम न नज़र आता। बबूल के हर पेड़ पर बया चिड़ियों के कई सारे सुन्दर, अनूठे घोंसले टंगे हवा में लहराते रहते। बबूल की लहरिया फलियों को हम पैरों में पायल की तरह पहन लेते। टिटहरी चिड़िया ज़मीन पर अपने अण्डे देकर उनकी रखवाली करती घूमती रहती। टिटहरी चिड़िया की एक ख़ासियत है कि वो कभी पेड़ पर अपना घोंसला नहीं बनाती। इमली और बरगद के इतने पुराने पेड़ हैं कि वो हमें क़िस्से कहानियों की तरह भूत–प्रेतों के बसेरे लगते। उनके मोटे–मोटे तनों में पक्षियों ने अपने कुटीर बना लिये थे। उल्लू और गिरगिटों का सपरिवार डेरा था। हम बच्चे अक्सर कॉमिक्स और किताबों की कहानियाँ उससे जोड़कर आपस में बतियाते कि हो न हो चन्दामामा की चुड़ैल इसी इमली के पेड़ पर रहती होगी। जब चुड़ैल–डायनों की बातों से जी घबराने लगता तो बचाव के लिए परियों का ज़िक्र छेड़ देते। ये परियाँ अति सुन्दर, भली और दयालु होतीं हैं जो किसी को भी कष्ट में नहीं देख सकतीं थीं। मान्यता के अनुसार ईश्वर ने इन्हें दूसरों का दुख दूर करने के लिए ही बनाया था। ये सब इसलिए कि जब बालमन इमली के पेड़ की चुड़ैल से भयाक्रांत होता तो आँवले पर रहने वाली परी हमें उससे बचाव का आश्वासन देती प्रतीत होती। उस समय टी.वी. कम्प्यूटर तो था नहीं बस किताबों की दुनिया थी जिनमें अपनी कल्पना शक्ति से चाहे जितना विचर लो और कल्पना की कोई सीमा तो होती नहीं............।

ऐसे ही प्रतिदिन जब सुबह–सुबह महिलाएँ और बच्चे गोबर इकट्ठा कर अपना आंगन लीपने के लिए ले जाते तो मैं भी थोड़ा गोबर लाकर बगीचे के बीचों बीच लीपती और रंगोली बनाती। दीवाली आती तो बाकायदा दिये जलाती। कई लोगों को बड़ा आश्चर्य होता कि हम लोग ये सब तो करते हैं फिर लक्ष्मी पूजा क्यों नहीं करते ? मम्मी–पापा की सोच थी–'बच्चे तो इसी तरह खेलकर समाज में बड़े होते हैं।'

बचपन में कभी लगा ही नहीं कि हम दूसरों से अलग हैं। हमारा धर्म, रीति–रिवाज अलग–अलग हैं। घर के माहौल में बिल्कुल कट्टरपन नहीं था। जब भी किसी से मिलते दिल से मिलते। होशंगाबाद में रामजी बाबा का खूब बड़ा मेला लगता था। पूरा मोहल्ला साथ मिलकर मेला देखने जाता था मैदान में रावणदहन होता। तत्पश्चात् झूला झूलने की तो जैसे बच्चों में होड़ लगी रहती। बड़ा सा आकाश झूला सबसे ज़्यादा आकर्षण का केन्द्र बना रहता। छोटे लड़के जहाँ गेंद, गुब्बारे खिलौने खरीदते तो हम लड़कियाँ मनिहारी की चीजों की ओर सहज आकर्षित होतीं। हार–बूंदे, क्लिप, चूड़ी अगर खरीद लिए तो समझो ख़ज़ाना हाथ आ जाता। सोने–चाँदी कि फिर किसे फ़िक्र। खुशियाँ छोटी मगर मन भर की। कोई बड़ी ख़्वाहिश नहीं। माँ–बाप पर भी अपनी बच्चों की फ़रमाइशें पूरा करने का अनावश्यक दबाव नहीं। जो है, जितना है उसी में

खुश रहना आता था सबको जितनी लम्बी चादर उतने पैर पसारिये वाली कहावत लागू होती थी।

नर्मदा नदी पर बने अनेक घाटों में प्रसिद्ध सेठानी घाट पर नाव की सवारी करके जाना। हिचकोले खाती बड़ी सी नाव और आस–पास तैरती डोंगियों का मनोहारी दृश्य। नदी के तट पर तऱबूज़, ख़रबूज, फूट आदि की फ़सल बाड़ियों से घिरी हुई लगी होंती। अगर वहाँ रखवाली के लिए कोई आदमी न होता तो समझिये एक आध ख़रबूज तो हम बच्चों की दावत बनना ही बनना है। वरना 10 (दस), बीस पैसे, चार–आठ आने में तरबूज़–ख़रबूज़ की झोला भरकर ख़रीददारी हो जाती। आजकल ये सिक्के ही चलन से बाहर हो गये हैं। अब क़ीमते ऐसी आसमान चढ़ गई हैं कि झोला भर कर यदि शॉपिंग मॉल में पैसा लेकर जायें तो वो भी कम पड़ जाये। ब्राण्ड का ज़माना है। आधुनिकता की आँधी में बाज़ारवाद / उपभोक्तावाद का बोल बाला है। आज व्यक्तित्व पर सादगी और नैतिकता की बजाय स्टेटस की बाहरी चमक–दमक हावी है। मन की सुन्दरता, विचारों की शुद्धता कोई देखना नहीं चाहता। जैसे एक युग बीत गया। नये काल खण्ड की तीव्र गति में सारी धैर्यवान चीज़े बही चली जा रही हैं। पुरानी पीढ़ी मात्र तमाशबीन बन कर रह गई है।

पर आज जब खुद मेरे बच्चे हो गये हैं। सोचती हूँ क्या इन्होंने मेरी तरह स्वछन्द, उन्मुक्त बचपन जिया है। नहीं। ये कॉन्वेंट में पढ़ने वाले, किताबों, कम्प्यूटर, मोबाइल की दुनिया में खोये, कॉंक्रीट के जंगल में रहने वाले। नदी, पहाड़, जंगल के प्राकृतिक संस्पृश के बिना ही बड़े हो रहे हैं। दिनों दिन हो रहे विकास और उन्नति की, विज्ञान और उच्च तकनीक की क़ीमत हम कहीं न कहीं चुका रहे हैं। यांत्रिक युग में दिन ब दिन अकेले हो रहे हैं हम। इन्टरनेट और मोबाइल के माध्यम से जिस तरह दुनिया मुट्ठी में समा रही है उतना ही हम अपने–अपने दायरे मे सिमटे जा रहे हैं। लघुतम और आत्मकेन्द्रित हो रहे हैं हम। हमें अपने बच्चों के अन्दर लुप्त हो रही आत्मीयता और साझेपन को जगाना होगा। विकास के साथ आपसी विश्वास को भी बढ़ाना होगा। तभी हम सामूहिकता और सौहाद्र को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तानान्तरित कर सकेगें। वरना समय जिस तेज़ी से भाग रहा है हम भी इसके साथ क़दम–ताल करते भागते रह जायेंगे। और अपने नैसर्गिक स्वभाव को खो देंगे। इस 'खोने' को बचाने का प्रयास अभी से करने होंगे।

स्वयं सिद्ध

किस मरूभूमि से
गुजर रहे हैं हम
जहां न छांव है
न गांव है कोई
न कोई निशान
न पहचान है कोई।

यहां ढूंढना है
स्वयं अपना रास्ता
स्वयं को यहां
खुद पुकारना है।

आओ चले आओ
अपना ईमान
अपना मान बचाकर
तपती हुई राहों पर
सच की इन राहों पर
न छांव है
न गांव
यहां अपना रास्ता
तलाशना है

सच

सच के अपने
दस्तूर हैं कुछ
सच की क़ीमत
पड़ती है चुकानी।

सच का चेहरा
बड़ा बदसूरत
सच का घूंट भी
जहरीला
पर.....

सच्चाई की
ताक़त है बड़ी
सच का सुख
टिकाऊ
सच का साथ
अटूट
फिर क्यों न मैं
सच का साथ
निभाऊं ?

तलाश

हसरतों की प्यास
ले जायेगी कहां–कहां
सहराओं में
समन्दर में
नीले खुले अम्बर में
छान मारी ख़ाक
ज़मीं से आस्मां तक
जिस्म से जां तक
कभी न ख़त्म होने वाली
एक तलाश!

यही तलाश
क़ायम रखेगी
वजूद दुनिया का
ताक़यामत
सफर ज़िन्दगी का
हैवान से इंसां तक!!

सेतु

करमजीत कौर
एम.आई.जी.–1, हाउसिंग बोर्ड कालोनी, पार्वती किराना के पास, अघनपुर, धरमपुरा, जगदलपुर–494001, छ.ग.
मो.–9425261429

छत पर खड़ी होकर अक्सर पेड़ों की लम्बी कतारों को देखा करती हूँ। कितने क्रमबद्ध, बिना किसी योजना के एक दूसरे से परस्पर समान दूरी बनाये हुए वर्षों से उसी स्थान पर खड़े हैं। इन्हें देखकर लगता है क्या कभी नष्ट नहीं होते। हाँ, शायद कुछ पीली कमजोर पत्तियाँ झड़ जाती हैं और उनकी जगह पर कुछ नईं हरी पत्तियाँ खिल उठती हैं।

ये मैंने कभी नहीं देखा कि हरी पत्तियाँ भी कभी शाख से टूट कर गिरती हों। पर अचानक पंछियों का एक झुंड कभी कभी इन हरी पत्तियों को कुतरने लगता है। ये देखना बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगता। हाँ, ये जरूर है कि हरी पत्तियों के साथ मुझे याद आ जाते हैं रवि दा। उनके साथ जुड़ी ढेरों यादें। हर वक्त महकते फूलों की तरह व्यक्तित्व के स्वामी। पीली पत्तियों का अस्तित्व तो जैसे उन्होंने कभी जाना ही नहीं।

शाम के धुँधलके में पंछियों का झुंड एक के पीछे एक कतारबद्ध जब अपने घोंसलों को लौटता है, तब मुझे लगता है इनके बीच ऐसा कौन सा सेतु है जो इन्हें एक के पीछे एक आने को प्रेरणा देता है। शायद कुछ भी नहीं। बिना किसी बंधन के भी ये आपस में बंधे हैं एक निर्दिष्ट मंजिल का सफ़र करने को।

रवि दा के लिए लिखते समय भी ये सेतु याद आ जाते हैं। मेरे और रवि दा के बीच भी संबंधों के सेतुओं की कोई आवश्यकता मैंने कभी महसूस नहीं की। और एक आज्ञाकारी पंछी की नियती की तरह जिस ओर रवि दा मुझे ले जाते, चल पड़ती, पता था रवि दा की निर्देशित राह मुझे अपने घोंसले तक ही पहुँचायेगी।

बाहर से आये रवि दा, व्यापार के सिलसिले में। और मैं जैसे उन्हीं की होकर रह गई थी। उठते–बैठते, खेलते–कूदते वक्त यूँ कहिए कि कभी भी रवि दा को भूल नहीं पाती थी। वह भी जब कभी बाहर से आते, जैसे ही अटैची रखते, मैं उनकी आवाज़ में घुल–मिल जाती। हर कमरा 'नेहा' के स्वर से ही प्रतिध्वनित होने लगता। और नेहा को तो जैसे खोये हुए अमूल्य मोती मिल गये हों। मेरा मन खुशी में अपने आप में न होता।

रवि दा तुम्हारे विषय में कुछ लिखना नहीं चाहती थी, लिखकर तो जैसे सबकुछ एक सीमा में बंध जाता है। तुम्हारा प्रेम तो असीम था। शब्द तो बहुत छोटे हो जाते हैं तुम्हारे सामने, एकदम बौने। परन्तु मन नहीं मानता, तुम्हारा साथ पाने के लिए शब्दों के बौने अस्तित्व का सहारा ढूँढने लगी हूँ।

यूँ तो मन की थाह पाना वास्तव में स्वयं हमारे लिए मुश्किल होता है। मन वास्तव में क्या चाहता है, ये सब बातें तो अब सोचने लगी हूँ, जब तुम मेरे पास नहीं हो। पर तब इतना जानती थी कि रवि दा पर सिर्फ मेरा अधिकार है। और मेरा मन कुछ न जानता था न ही जानना चाहता था और न ही समझता था। एकाधिकार की ये भावना रवि दा के प्रति अगाढ़ अनुराग के फलस्वरूप उत्पन्न हुई थी जो आज भी विद्यमान है। तब भी रवि दा जब कभी दीदी के साथ कहीं बाहर शापिंग के लिए चले जाते या फिर कभी भी मुझे कम महत्व देते, रो–रोकर मेरा बुरा हाल हो जाता। कई दिनों तक रवि दा से कोई बात ही नहीं होती। पर स्नेह में नाराजगी कितने दिन टिकती। रवि दा भी चुप रहते। उन्हें मालूम रहता कि मैं नहीं रह पाऊँगी उनसे बोले बगैर। हार मुझे ही माननी होती। पर इस हार का मुझे दुख नहीं होता, हाँ, जताती जरूर कि ''मुझे काम है इसलिए आपको बुलाना पड़ रहा है वरना मैं तो.... ।'' रवि दा हँस पड़ते। जानते थे साइंस का थ्योरम पूछना तो मेरा बहाना मात्र है।

तुलसी पर पानी डालते हुए फिर रवि दा जैसे सामने खड़े हो जाते। अक्सर तुलसी पर जल अर्पण करते समय पूछ बैठते ''नेहा! तुलसी का वानस्पतिक नाम क्या है ?'' और मैं हर बार भूल जाती। मुस्कराती हुई कृत्रिम रोष व्यक्त करती ''तुम मुझे पूजा तो कर लेने दिया करो।''तब रवि दा कहते ''जिस दिन तुम तुलसी का वानस्पतिक नाम बता दोगी, उस दिन मैं समझूँगा कि तुम्हारी पूजा सफल हो गई।''

अब सोचती हूँ, रवि दा आयें और पूछ कर देखें, तुलसी का बॉटनिकल नेम बता पाऊँ या नहीं पर ये जरूर कहूँगी, ''रवि दा! तुम्हारा स्नेह पाकर ही मेरी सारी पूजा अर्चना सफल हो गई है।''

इसी तरह मेरी छोटी–बड़ी बात में रवि दा की दखलंदाजी और मेरा हँस कर कभी उनकी बात को टाल देना, तो कभी उनकी बात मान लेना, समय गुजरता चला गया। दस वर्ष कब बीत गये पता ही नहीं चला। रवि दा के स्नेह सेतु में जब मैं पहली बार बंधी थी, तब मैं दस वर्ष की थी। और अब बीस वर्ष की किशोरी। बहुत कुछ सोचने समझने लगी थी। उम्र के इस दौर में, मेरे स्नेह सेतु कई भागों में बँटने लगे थे, पर रवि दा

के लिए स्नेह में कोई कमी नहीं आई थी। हाँ, ये जरूर था कि इन दस वर्षों में उनका व्यापार काफी बढ़ था, व्यस्त हो गये थे वे, और मुझ पर भी पढ़ाई का बोझ पहले से कुछ ज्यादा हो गया था।

शाम से रात घिर आई थी। मम्मी की आवाज से चौंक उठी। रवि दा के ख़्यालों में इतना गुम हो गई थी कि पता ही नहीं लगा, शाम कब की ख़त्म हो चुकी थी।

मम्मी कह रही थी, ''रंगोली नहीं बनानी, आँगन सूना पड़ा है।'' आँखें डबडबा गईं। सूनापन तो मन के आँगन में भी है उसे किन रंगों से भरूँ। रंग भरने वाला चितेरा ही न जाने कहाँ खो गया है।

नीचे उतर आई थी। बेमन से रंगोली का सामान लेकर, आँगन में बैठ रंगोली बनाने लगी। हठात् रवि दा फिर सामने आ बैठ गये। स्मृतियों के हर झरोखे में रवि दा का ही तो प्रतिबिम्ब था, जो मेरे हर क्रियाकलाप में साथ रहता था। आज उनकी अनुपस्थिति में भी उनकी याद बार–बार मेरे समक्ष आ खड़ी हो रही है। तब भी दीपावली का ही दिन था। रंगोली बनाने के लिए मेरी अनिच्छा देख रवि दा ने मम्मी से कहा, ''लाइये ये नहीं बनाती तो मैं ही बना देता हूँ।'' और आड़ी टेढ़ी जैसी भी लाइनें बना दी और कहने लगे ''तुम सोचती थी तुम्हारे बगैर तो कोई ये काम कर ही नहीं सकता।'' मैं बहुत हँसी दिल खोलकर। और वो दीपावली रवि दा की रंगोली में ही हमने मनाई।

इसी तरह हर दीपावली पर रंगोली में रंग भरते भरते मेरा मन भी निस्वार्थ प्रेम के रंगों में रच बस गया था। कहीं कोई चाह नहीं थी। बिना संबंधों की मधुरता में मैंने रवि दा को पाया था। मन की तमाम उलझनों से परे थे रवि दा। उनके साथ से मैं एक बुनियादी तत्व को पहचानने लगी थी कि स्नेह का साया समग्र प्रकृति की हर बेजान कृति के लिए परम आवश्यक है।

तब भी दीपावली का ही दिन था। रवि दा का हम सबको इंतजार था। वो व्यापार के सिलसिले में बाहर गये हुए थे। मैं आम के पत्तों को बाँधने के लिए अंदर आई कि भैया टेलीग्राम लेकर आये, और दहाड़ें मारकर रोने लगे। विलाप का ये दृश्य मैंने पहले कभी नहीं देखा था। भैया के अस्फुट स्वर मेरे कानों में रेंगने लगे थे, ''रवि दा नहीं रहे।'' मूक हो गई थी मैं। आम के पत्तों को किसी सेतु में नहीं बाँध सकी थी। उस दिन रंगोली भी नहीं बनायी थी, दिये भी नहीं जले थे।

पंद्रह दिन तक विक्षिप्तावस्था में रही। लगा रवि दा मेरे साथ मजाक कर रहे हैं। फिर से एक बार मेरे प्रेम को परखना चाहते हैं। बचपन में अक्सर ऐसा करते थे। मैं स्कूल से लौटकर आती और रवि दा को ढूँढ़ती, तो वे कहीं छिप गये होते, मम्मी से ये कहकर कि ''नेहा से कहना, रवि दा तो चले गये।'' जब मैं रोने लगती तो बाहर निकल आते और कहते, ''पगली! तुझसे दूर मैं भला कहीं जा सकता हूँ? मैं तो मजाक कर रहा था।''

मुझे लगा अब भी रवि दा आयेंगे और ऐसा ही कहेंगे, पर रवि दा नहीं आये। वो आ भी नहीं सकते थे। दरअसल मेरी ही समझ में कमी थी। मृत्यु के शाश्वत सत्य को मैंने इस उम्र में आकर भी नहीं पहचाना था। मुझे जीवन में हमेशा ऐसा लगा जो चीज पा ली है वो खोयेगी नहीं। बचपन से ही अपनी प्रिय वस्तुओं को ताले के अंदर सुरक्षित रखती ताकि कोई हाथ न लगा सके, पर रवि दा को अपने स्नेह के लॉकअप में नहीं बंद कर सकी। मृत्यु के क्रूर, निर्मम हाथ उन्हें उठा ले गये।

रवि दा तुम नाराज तो नहीं हो न! मैंने तुम्हें शब्दों की सीमाओं में बाँधने का निष्फल प्रयत्न किया है। सच कहूँ रवि दा, अब तक एकाधिकार को पहचाना था, एकाकीपन क्या होता है, ये तो तुमने जानने ही नहीं दिया। अब भी एकाकीपन की परिभाषा को समझना नहीं चाहती हूँ, तभी तो कलम को अपना राजदार बना लिया है। हाँ, तुममें और इसमें इतना अंतर जरूर है कि कलम मुझसे तुलसी का बॉटनिकल नेम नहीं पूछती।

रवि दा मुझसे नहीं बनती रंगोली। तुम लौट आओ, कुछ समय के लिए ही सही, आड़ी–टेढ़ी लाइनें ही बना जाओ, वादा करती हूँ तुम्हारी रंगोली पर बिल्कुल नहीं हँसूँगी।

अपने आप पर हँसी आती है, उसे बुला रही हूं जो न जाने कहाँ है। मन खिन्न हो उठता है। अधूरी रंगोली बना कर छत पर, फिर से आकर खड़ी हो जाती हूँ। पेड़ पर लगे उस हरे पत्ते पर नज़र जाती है।

अरे! ये आज तो इसे पंछियों ने पूरा ही कुतर डाला, और जमीन पर पड़ा बिलख रहा है। अनमनी सी होकर आकाश को निहारती हूँ तो लगता है, आसमाँ के समग्र अस्तित्व को समेटे भी चाँद कितना एकाकी है जैसे उसे भी किसी सेतु की तलाश हो।

हरकत में बरकत

जयचन्द्र जैन
सन्मति आटो ट्रेडर्स
राजमहल परिसर,
जगदलपुर
छ.ग. पिन–494001
मो.–9425266070

आदिमानव ने आसमान की छतवाली सम्पूर्ण पृथ्वी को अपना घर बनाया । इस पृथ्वी पर उपलब्ध चीजों को अपनी उदरपूर्ति का साधन माना । सर्दियों में सूर्य की धूप सुखद लगी, गर्मियों की रात में चाँद की चाँदनी से ठंडक मिली, बरसात में बारिश ने गर्मी की तपन से उसे बचाया । इन प्राकृतिक उपहारों को उसने आश्चर्य से देखा और इन्हें उसने देवता के रूप में पूजना प्रारंभ कर दिया, जो किसी न किसी रूप में आज भी प्रचलित है ।

उसी आदिमानव ने कभी खेल–खेल में हाथ से दो पत्थरों को रगड़ा । उस घर्षण से चिनगारी निकली । चिनगारी देख उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा । यह आश्चर्य उसने अन्य लोगों को भी दिखाया । कुछ लोगों ने मिलकर उस चिनगारी से घास–फूस जलाया । हो सकता है, यह घटना सर्दी की हो । सर्दियों में अग्नि का सान्निध्य उसे अच्छा लगा होगा । यह भी संभव है कि उस आग में कुछ कन्द–मूल या छोटे–मोटे पशु–पक्षी झुलस गये हों । उन झुलसे पदार्थों को खाना उसे अच्छा लगा होगा । फिर उसने उन्हें आग में भूनकर खाना सीखा और तभी से उसने अग्नि को देवत्व की संज्ञा दी और उसे पूजना प्रारंभ किया ।

सभी पत्थरों के घर्षण से तो चिनगारी नहीं निकलती और जिन पत्थरों के घर्षण से चिनगारी निकलती है, वे सब जगह न पाये जाते हों । इस कारण उसे अग्नि को सुरक्षित रखने की प्रेरणा मिली होगी । अग्नि को सुरक्षित रखने के लिये ही घरों में यज्ञ की प्रथा का चलन हुआ होगा ।

बचपन में हम यू.पी. में रहते थे । वहाँ पुरुषों को हुक्का पीने की आदत थी । हो सकता है, आज भी हो । जिन घरों में हुक्का पीनेवाले होते थे, उन घरों में गोबर के छेनों के द्वारा आग को सुरक्षित रखा जाता था । यदि कभी गोरसी में छेना रखना भूल जाते थे, तो दूसरे घरों से चिलम के लिये आग तलाशते थे और फिर गोरसी में भी आग जलाना नहीं भूलते थे । यद्यपि माचिस भी बाजार में मिलती थी, लेकिन फिर भी गोबर के छेने के अंगारे से आग जलाना सरल था । गोरसी में आग सुरक्षित रखना भी मानो घरों में यज्ञ की प्रथा की याद हो। रसोई गैस ने चूल्हा जलाने की प्रथा ही समाप्त कर दी। आज तो घरों में यह स्थिति है कि यदि रसोई गैस अचानक खत्म हो जाये, तो उस रोज खाने के लिये होटल जाना पड़े, क्योंकि घरों में न तो खाना बनाने के लिये दूसरे साधन होते हैं और न आजकल की बहुओं को उन्हें उपयोग करना आता है। यद्यपि आज कुछ घरों में बिजली का चूल्हा भी रखा जाने लगा हैं।

पुरानी बात है कि जेम्स वॉट अपने घर में बैठा था । घर में पतीली में पानी गर्म हो रहा था । पतीली पर ढक्कन ढका हुआ था । जब पानी खूब गर्म हो गया, तो भाप के दबाव से ढक्कन ऊपर उठने लगा । जेम्स वॉट ढक्कन की इस हरकत को देख रहा था। उसके दिमाग में आया कि भाप में ताकत होती है। उसके दिमाग की इस हरकत ने कोयले और पानी की भाप की शक्ति से रेलगाड़ी को जन्म दिया। उस जमाने में लोगों ने उसे पागल समझा, लेकिन वह धुन का पक्का निकला, जिसके कारण आज हम रेलगाड़ी द्वारा न केवल पूरे भारत का बल्कि पूरे विश्व का भ्रमण कर सकते हैं।

एक घटना और याद आ रही है । न्यूटन अपने बगीचे में बैठा था । उसने देखा कि पेड़ से एक सेव पृथ्वी पर गिरा । उसके दिमाग में हरकत हुई कि पृथ्वी में किसी ठोस चीज को अपनी ओर खींचने की शक्ति होती है । उसके दिमाग की इसी हरकत ने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत को जन्म दिया ।

एक कहावत है कि खाली बैठा बनिया क्या करे ? इस कोठी का धान उस कोठी में करे । इससे नीचे का धान ऊपर और ऊपर का धान नीचे हो जाता है और धान खराब होने से बच जाता है । धान की इस हरकत से बरकत होती है ।

चलना जीवन की और रुकना मौत की निशानी है । यह उक्ति निरंतरता की सूचक है । डार्विन का 'गतिशीलता का सिद्धांत' हरकत में बरकत पर ही आधारित है । इस कारण सभ्यता, संस्कृति और इनसे उपजा समाज कभी भी स्थिर नहीं रह सकता । उसे हमेशा डायनैमिक होना पड़ता है । इसी में उन्नति है । जहाँ स्थिरता है, वहाँ अवनति है । नदी में हरकत (बहाव) रहती है, तो लोगों को जिंदगी देती है । जब पानी बहता रहता है, तो शुद्ध और पेय रहता है, लेकिन स्थिर होने पर अशुद्ध हो जाता है, उसमें काई जम जाती है और दुर्गन्ध आने लगती है, जिससे बीमारियाँ फैलती हैं ।

हरकत–रहित शरीर के पाँचों तत्व अपना अस्तित्व खो देते हैं । शरीर में हरकत न होने पर पृथ्वी–तत्व बंजर, जल–तत्व दुर्गन्ध –युक्त, अग्नि–तत्व धुंआ–युक्त, वायु–तत्व प्रदूषण–युक्त, और आकाश–तत्व पर धुँधले काले बादल मँडराने लगते हैं । इस प्रकार पंचतत्वों से निर्मित यह शरीर एक दिन बेकार हो जाता है और पुनः पंचतत्वों में विलीन हो जाता है । अतः जीवित रहते तक पंचतत्वों से निर्मित इस शरीर में हरकत कायम रखें । हरकत–रहित शरीर निष्क्रिय हो जायेगा । निष्क्रियता मरण की निशानी है । हरकत करता बच्चा सबको अच्छा लगता है । बिना हरकत के तो साँप को भी रस्सी समझ लिया जाता है।

भीड़

डॉ. सुदर्शन प्रियदर्शिनी
ओहयो यूनिवर्सिटी
यू.एस.ए.

'आप तो अकेली हो जाती होंगी..!'

'अकेले कैसे समय बीतता होगा !'

'वीरानियाँ घेर लेती होंगी, इतनी लम्बी तन्हाई कैसे झेली जाती होगी। न अड़ोस, न पड़ोस ...!' वंदना और उस के साथ आई अम्बिका ने आते ही अपना विश्लेषण शुरू कर दिया।

सीमा ने भरपूर नज़र भर कर दोनों को देखा। और मन ही मन सोचा– मैं जानती हूँ तुम लोग किधर जा रहे हो, जब कि तुम लोग मुझ से भी अधिक अकेली हो।

सीमा कुछ ही दिन हुए विदेश से लौटी है। लौटी नहीं कहना चाहिए–बल्कि अपनी माँ से मिलने आई है जो इस समय उम्र के कगार पर हिचकोले ले रही है। वह जानती है, वह अकेली है। वह जानती है जिन सम्बन्धों की कारी कमरी उतार कर उस ने फैंकी है वह सायास थी। पर जिस कमरी को ओढ़े रहने की तमन्ना रखती है–वह धीरे–धीरे छितरती जा रही है, यह वह बताना नहीं चाहती। जिस अकेलेपन की बातें वे कर रही हैं–वह अकेलापन नहीं बल्कि दूसरी तरह की उपेक्षाएं हैं। जो यहाँ रह कर ये लोग समझ नहीं पायेगी। यहाँ और कुछ हो या न हो–अभी भी लोक–लाज बाकी है। सीमा सोचती है वह कभी अकेली होती ही कहाँ है। जन्म से लेकर आज तक इकट्ठी की हुई भीड़ उस के अंदर धमाचौकड़ी मचाती रहती है। इस भीड़ से निजात पाना क्या आसान है! अंदर भीड़ है–सन्नाटों की। मन के टूटते बेलाग तटस्थता के सन्नाटे, स्वार्थ के सन्नाटे, अपने अस्तित्व को खो देने के सन्नाटे, अपनी पहचान न बना पाने के सन्नाटे, अपनों की बेमानी–निरस्तता के सन्नाटे, उन सब सन्नाटों की भीड़ में वह घिरी रहती है।

सारा दिन अकेले घर में ऊपर–नीचे, बाहर–अंदर यही भीड़ नहीं छोड़ती। साथ सोती है, साथ उठती है, साथ बैठती है। ज्ञानी कहते हैं अपने अंदर देखो–अपने अंदर झांको–अपने आप को पहचानो। कहाँ बन पाती है अपनी पहचान–इस भीड़ के बीच। यही नहीं अलग–अलग तरह के अंदर जमे द्वंदों की भीड़ आस्था–अनास्थायों की भीड़, अपने परायों की भीड़, भिन्नताओं की भीड़, अपने और परायों के दंशों की भीड़ ऊपर नीचे घेरे रहती है। वास्तव में ताड़ना से अधिक अस्वीकार कचोटता है। जूती की नोक पर हम रह सकते हैं पर आँखों में उभरा बेगानापन जूते में चुभी कील से भी ज़्यादा पीड़ा देता है। जब अपनापन और अपनेपन की जगह मर जाती है तब उस जगह का त्याग ही उस का उपाय रह जाता है। आज की सम्पन्न और आत्मनिर्भर नारी उपेक्षा–निर्भाव या असम्पृक्तता तो सह लेती है पर 'दुर–दुर' वाली अवमानना शायद नहीं सह पाएगी क्योंकि वैसी 'दुर–दुर' करने की क्षमता आज उस में भी है। दिन–रात इन्हीं भीड़ों में जूझती–डूबती–उतरती वह थक जाती है।

इन्हें कैसे समझाया जाय कि साथ रहना जब सांप–छछूंदर की गति जैसा हो जाता है, जो 'खाये न बने, न निगले बने' की स्थिति होती है, तब रोज़ की चिक–चिक, चिल्ल–पों, कुत्ता–बिल्ली की खों–खों और मारू–ताने–मेहनो से ज़िन्दगी बेहाल होकर अधर में लटकी बोदी रस्सी हो जाती है। तब भी उसी को पकड़ कर रोज़ झूलो, पींगें भरो और ज़मीन चाटो। जब शांत–निमग्न–सी गहरी ज़िन्दगी का एक पल नसीब न हो तो निजात पाना ही एक विकल्प रह जाता है। यों निजात भी इतनी आसान कहाँ रह जाती है। जब वैयक्तिक और सामाजिक थपेड़े पड़ते हैं। बाहर अंदर खिज़ालत और गलीचता के सिवाय कुछ नहीं दिखता, यही नहीं चप्पलें घसीटते रोज़ की घर लाने वाली दाना–पानी की मशीन, रौशनी पानी की मशीन चलाने वाली कोल्हू के बैल की तरह ज़िन्दगी बीतती है तो नामचीन ज़िन्दगी को लात मारने को जी चाहता है। किन्तु उस सब स्थायी–भाव के बाद जो रात को बिन नोच–खसोट के नींद का रस संचार होता है, वही अकेली ज़िन्दगी का सकून है। वह पाने के लिए कितना कुछ उलांघना–उलीचना पड़ता है। इस पर सोचने वाले की तो हेकड़ी निकल जाये। आज सरला, वंदना, अम्बिका सब बोल रही हैं–छाज तो बोले, छन्नी भी बोले, घर में छाछ नहीं और चली हैं दूध बिलौने। हंसी आती है।

पर यह सब क्या जाने मेरा रोज़–रोज़ अंदर झेला जाने वाला कुरुक्षेत्र; कहाँ समय देता है किसी को अकेला होने का। फिर हर बीता हुआ कल बचपना लगने लगता है क्योंकि हम आज के दिन समझदार हो चुके होते हैं और कल की कही हुई अपनी ही बात अपरिपक्व और बेमानी लगती है। उसी उहापोह की भीड़ झेलते–झेलते दिन से रात, रात से दिन और उसी तरह वर्षों की भीड़ इकट्ठी होकर एक दिन कंधे पर बैठ कर दबोचने लगती है। जो कभी अकेला नहीं रहने देती और तब वह चीख–चीख कर अपना वजूद मांगती है–अकेलापन मांगती है, पर सीमा इन सब के बीच या इन सब से अपने आप को टूटा हुआ नहीं देखना चाहती। दूसरी और जब वह पाश्चात्य स्त्री को देखती है जो अपने अधिकारों और आर्थिक सुरक्षा के अतिरिक्त सब कुछ समेट लेने की आस्था में पली है वह भी दयनीय है। अन्ततः दो विपरीत दिशाओं में टूट–फूट

हम जैसी संस्कार–जनित विदेशी नारी की ही होती है।

सीमा वंदना की स्थिति को अच्छी तरह से जानती है जो हिंदुस्तान में रहते हुए भी कितनी अकेली हैं। दोनों पति–पत्नी एक घर में रह कर भी अपना खाना अलग–अलग बनाते हैं। जब बच्चे आते हैं तो आडम्बर का कम्बल ओढ़ कर अलग–अलग हुई सिगड़ीयां जोड़ दी जाती हैं।

वंदना ने सीमा को मुस्कराते देखा तो झेंप गयी। वह समझ गयी कि तीर निशाने पर लगे बग़ैर उस पर वापिस लौट आया है।

सीमा ने बेबाकी में सिर हिलाया–'नहीं तो मुझे तो ज़रा भी अकेलापन नहीं लगता। उल्टा मुझे तो अपने लिए या अपने आप में झाँकने के लिए समय ही नहीं मिलता। मैं तो दिन भर अपने आप से ही लड़ने में बिता देती हूँ।'

'क्यों अपने से कैसी लड़ाई लड़ती रहती हो?' अम्बिका व्यंग्य से चहक रही थी।

'यही अपने अस्तित्व को ले कर अपनी बेबाक ख़ामियां, अपनी हार–जीत–विवशताएँ, अपेक्षाएँ या उपेक्षाएँ इन सब के साथ उलझती रहती हूँ। हमारी हार बाहर से नहीं अंदर से होती है अम्बिका! तब लगता है बीच का सागर चौड़ा होता जा रहा है और किनारे दूर होते जा रहे हैं, बस दूरी ही दूरी। अबाध चुप्पी। मतलब से मतलब जैसे शब्दों का काल पड़ गया हो। इसी लिए जब इंडिया आती हूँ, लगता है कितनी भीड़ है। गुथम–गुत्था, जमघट, तिल रखने की जगह नहीं। आपस के पसीने की बू बिन मिले अंदर नथुनों में घुस जाती है। यह भी एक तनाव भरा अलगाव–सा पैदा करती है। यह क्या हो गया है कि सन्नाटों में रह कर आदतें ख़राब हो गई हैं। सहवास की आदत ही छूट गई है। मुझे मेरी जगह चाहिए, मेरी धुरी चाहिए, इसी धुरी के चक्र पर घूमते–घूमते घिस रहे हैं या घिसट रहे हैं हम। जीवन से हमारी क्या अपेक्षा है। जीवन की क्या राह है, कौन सी राह ठीक है कुछ निर्णय नहीं हो पाता। यहाँ हर बात पर पूछा जाना दख़ल देना लगता है। पर यह सामाजिकता है, सोहार्द है, वहाँ यही हस्तक्षेप है। दो देशों में, दो स्थितियों में इतना अन्तर्विरोध, मैं अपने–आप में इसी छिछालेदारी में लगी रहती हूँ।'

'अरे भई ! तुम्हारी तो बातें ही हमारी समझ में नही आती। यह अंदर और बाहर की लड़ाई क्या होती है! हम तो भई खाते–पीते, घूमते ऐश करते हैं।' अम्बिका भरपूरता से महक रही थी।

सीमा जब से विदेश में रहने लगी है ज़्यादा कुछ नहीं जानती, लेकिन अम्बिका को इतना जानती है कि वह बाहर ही उड़ी रहती है। अपनी मर्ज़ी से आती–जाती अपना दिन बिताती है। उसकी पति के साथ अनबन खुलेआम नहीं, अंदर ही अंदर घुटती हुई–सी एक दूरी है। वह अपना अकेलापन घर के कोने में घोटता है और यह बाहर उड़ उड़ कर। यों सम्बन्ध खड़े लंगड़ी टांग पर ही हैं। एक कदम टेढ़ा पड़ा तो धड़ाम से ज़मीन पर। सीमा के घोषित अकेलेपन की आड़ में अपने नंगे–उघडे सुराख़ ढक रही थी दोनों।

सीमा ने सोचा – दोनों सहेलियां है और बरसों बाद मिली हैं तो झेलना और सुनना दोनों विवशता हैं।

'न जाने किस सकून की खोज में मृग की तरह हम सब कुलांचे भरते रहते हैं। कभी नहीं जान पाते कि हमें क्या चाहिये! एक आडम्बरी जीवन से अच्छा है, केंचुली उतार फेंको।' सीमा ने अपना तीर छोड़ा।

'यह साहस तुम्हें विदेश देता है कि तुम अपनी खिलंदड़ी प्रकृति के साथ जी सको। खुलेआम–तितलियों की तरह उड़ सको, अपनी राह स्वयं खोज सको। उस सब के बाद भी सिर ऊंचा उठा कर जी सको। यहाँ अपने देश में खुलेआम विचरना उखड़ा हुआ सांड कहलाता है। अकेलेपन के साथ बिन कहे किंवदंतियों का तांता लग जाता है। अपने ही लोग तुम्हें अछूतों में शुमार कर देते हैं।'

'सीमा! तुम्हें यह सुविधा है, हमें नही।'

अंदर ही अंदर सीमा को लगा उस की बात कहीं किसी दुखती रग पर भारी पड़ी है। यों उस ने किसी विशेष मन्तव्य से कुछ नहीं कहा था। फिर भी उन को लगा जैसे वह उन्हें अपनी राह घसीटना चाहती है। वातावरण उड़ा–उड़ा–सा उदास–सा हो गया था।

'यह तो अच्छा ही है। हिन्दुस्तान में तो सुना है अछूत होना वरदान हो गया है। सब कुछ उन्हें ही मिलता है आजकल।' और सब ठहाके मार कर हंस पड़ी। लगा हवा थोड़ी हल्की –फुलकी हो कर उड़ने लगी है।

सब चाय पी चुके थे। टेबल से उठ कर अब डायनिंग रूम में बैठ गये। इधर–उधर की टिप्णियाँ चल पड़ी। अमरीकी बच्चों की मानसिकता, मनस्थिति उन का अमरीकी समाज में उठना –बैठना, वहां के संस्कारों में अपने–आप को मिलाने की जद्दोजहद और अपने वजूद की तलाश, यह सब ...।

तभी सभी का ध्यान गया सरला पर, वह भी आने वाली थी न! जैसे ही याद किया,दरवाज़े पर दस्तक हुई और सरला हाज़िर। 'आओ, आओ! कहाँ रह गई थी तुम!' सीमा ने उस से गले लगते हुए कहा।

'अरे! कुछ नहीं, हमारे पुच्छले, हमारे कर्तव्य–ज़िम्मेदारियाँ ही नहीं छोड़ती हमें।

'किन पुछल्लों की बात कर रही हो?'

'अरे, वही जिन्हें हम उम्र भर छाती से चिपकाये रहते हैं।

जिन के लिए खाना–पीना, उठना–बैठना, घूमना–फिरना सब कुछ मुहाल हुआ रहता है। उन के प्रति हमारी पिछलग्गू डियुटियाँ कभी पूरी नहीं होती। हम से अच्छे है तुम्हारे अमरीका के लोग, जो पहले अपनी ज़िन्दगी देखते हैं बाद में बच्चों की।'

'इसलिए बच्चे होश सम्भालते ही माँ–बाप को लात मार कर अपनी राह निकल लेते हैं, न गिला, न शिकवा।' सीमा ने सरला के लिए नाश्ता रखते हुए कहा।

'यहीं तो हमारी परवरिश रंग लाती है।' अम्बिका बोली।

'नहीं कुछ भी ठीक नहीं है, अम्बिका! यहां भी हमारी परवरिश की कोई नामनेकी नहीं। पालने से बाहर पांव निकालने की देरी होती है, वह भी वहीं के रंग में रंग जाते है, पानी का बहाव सदैव ढलान की ओर ही होता है न! यों देखा जाय तो अपनी इस संस्कृति के साथ वहां जीने में मझधार में नैय्या डूबोने जैसा है। नैया न इधर, न उधर। इधर कुआं उधर खाई वाली बात है। पतियों की ही बात ले लो। हिन्दुस्तानी केंचुल उतार नहीं सकते, पर पत्नी में अंग्रेजी छम्मक–छल्लो ढूंढते हैं। मेज़ पर तैयार खाना भी चाहिए, घर की मेहतरानी और साफ़ –सफाई वाली भी चाहिए। उस पर कमाऊ और बिस्तर में बार–बाला की छरहरी छांव भी।'

'मरण तो उस देश में भी हम औरतों का ही हुआ है। तभी एक दिन रस्सी इतनी खिंचती है कि टूट कर ही रहती है या रेशे–रेशे होकर टूटने की कगार पर खड़ी होती है।' सीमा की आवाज़ में एक दर्द था।

'बच्चों का व्यवहार और रवैया इस आग में घी ही डालता है। चौबीस घंटे उन की सेवा में जुटी रहने वाली माँ बोडम –गंवार और असभ्य ही दिखती है।'

'हमारे किसी भी वार्तालाप को एक तीर से काट देते है ये बच्चे!'

'माँ! तुम कुछ नहीं जानती!'

'माँ! तुम्हे यहाँ का कुछ नहीं पता!'

'तुम्हारी पढ़ाई–लिखाई इस देश की नही है!' ये कहते कहते सीमा का चेहरा लाल हो गया। वंदना ने देखा सीमा के चेहरे का दर्द कोयले की आग पर पका–सा दुःख था, जो कभी तेज़ हो जाता था तो कभी बिल्कुल निम्म्हा (हल्का) जैसे वह दर्द कहीं उस की रगों को उस के रक्त स्राव की तरह रेलता–पेलता उस की हड्डियों का फलूदा बनाता हो। वह देख रही थी कि वह दर्द को बाँटना भी चाहती है और नहीं भी। किन्तु आज वह सबकुछ कह गयी थी, जो वह कहना नहीं चाहती थी।

वंदना ने धीमे से सीमा के कंधे पर हाथ रखा और धीरे से उसे अपने से साथ सटा लिया। उस एक पल में देशान्तरों से बना फैला सन्नाटा छंट गया था। क्षण भर को सारी सहेलियाँ अतीत के किसी आंगन में श्टापू खेलने लगी थी। सभी की आँखों में हल्की–हल्की पावस की कनियाँ उभर आई थी।

इसी उहापोह में सीमा सोच रही थी 'इतने बवंडरों को लेकर जीना अकेला कहाँ रहने देता है ! यही भीड़ ही तो घेरे रहती है चौबीसों घंटे, आठों पहर, सोलह घड़ी। वंदना ने भी शायद समझ लिया कि सीमा किस भीड़ में घिरे रहने की बात करती है।

'कभी वायवी तो कभी प्रत्यक्ष, ये भीड़ सचमुच हर समय बांधे रखती है। इसीलिए अकेले होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता सरला। एक चक्रव्यूह है हमारे इर्द–गिर्द, जिस में हम उम्र भर घूमते रहते हैं। रास्ता ढूंढ़ते रहते हैं, किन्तु हमारी चेतना भी सुभद्रा की तरह सो जाती है और हमें अभिमन्यु बना कर छोड़ देती है।'

वातावरण फिर बोझिल होने जा रहा था। सीमा को ऐसा लगा वह अमेरिका के अपने सिंगल क्लब में बैठी है, जहाँ सभी की दास्तानें अपनी तरह से कहीं कचोटने वाली होती हैं।

सभी धीरे–धीरे जाने की तैयारी में खड़ी हो गई। वंदना के पति छः बजे घर पहुंच जाते हैं। और उसे घर में न देख कर उन्हें अपनी दिन भर की दिमागी सड़ांध निकालने का अवसर मिल जाता है। अम्बिका इतनी खिलंदड़ी होकर भी अँधेरे से पहले घर होना चाहती है। सरला की मस्ती बेटे की नाराज़गी से उड़न–छू हो जाती है।

धीरे–धीरे घर ख़ाली हो गया। इतनी चहल–पहल के बाद, एकदम उदासी और ख़ालीपन ... किन्तु सीमा को लगा–जैसे वह अभी–अभी कितनी अकेली हो गयी थी–अपनी भीड़ से परे।

सारा दिन फ़ोन न बजे, तब भी उसे उतना नहीं सालता।

फ़ोन बजते ही न जाने कितने रिश्ते, कितने नाते, कितने गिले–मेहने–उलाहने कंधे से कन्धा छिलने वाली भीड़ इकट्ठी कर देते हैं या आप ही हो जाती है।

अचानक फ़ोन की घंटी बजने लगी 'उठाऊँ या न उठाऊँ।'– सीमा इस असमंजस में थी कि एकाएक वह फ़ोन की तरफ़ दौड़ने लगती है। सारे दिन का पहला फ़ोन है।

उधर से बड़ी दीदी की आवाज़ है–'बंगलोर से सुषमा बोल रही हूँ।'

'जी दीदी!'

'बड़ी बुआ नहीं रही।'

वह धक और चुप, कुछ कह नहीं पाई।

एकाएक फिर रिश्तों की भीड़ में घिर–घिर आई वह।

माँ सबकी एक समान होती है

नरेश कुमार 'उदास'
आकाश–कविता निवास
मकान नं.–54 गली नं.–3
लक्ष्मीपुरम सेक्टर बी–1
(चनौर) पोस्ट–बनतलाब,
जिला जम्मू
मो–9419768718

''आप मुझे गलत काम करने को कह रहे हैं। मैं यह कार्य कादापि नहीं करूँगा।'' मैंने फैक्ट्री मैनेजर को स्पष्ट शब्दों में इंकार करते कहा था।''

''नहीं करोगे...। सोच... लो, फिर मत कहना।।'' इतना कहकर वह चला गया था ।

दरअसल फैक्ट्री के लिए जो विभिन्न स्पेयर पार्ट्स तथा रोजमर्रा का सामान आता वह कई महीनों से लोकल परचेज करके स्थानीय बाजार से मैं खरीद कर लाता था। इससे पहले यह कार्य मिस्टर सिंह देखते थे। उनकी स्थानीय दुकानदारों से गहरी दोस्ती हो चली थी। वह कमीशन भी खाने लगे थे। बहुधा जो वस्तुएं खरीद कर लाते वह मँहगे दामों की होती। शक तो उन पर होने लगा था, पर सबूत के बिना कुछ कहना सम्भव नहीं था। मैनेजर कौल साहब ने मुझे एक दिन कहा भी था। ''जो यह सामान लाते हैं उन पर कड़ी नजर रखना। मुझे कुछ चक्कर लगता है।'' मैंने उन्हें बताया था। ''सर जो यह सामान मुझे सीधे भण्डार में देंगे उन का मिलान तो मैं कैशमीमो या बिल से कर लेता हूँ। कुछ सामान यह सीधे फैक्ट्री इन्जीनियर को दे देते हैं फिर बिल भी सर्टीफाईड करवा लाते हैं, उन की इन्द्राज को मैं मना कैसे कर सकता हूँ। फिर भी मैं ध्यान रखूँगा।''

एक दिन मिस्टर सिंह ने मुझे एक पुराना बिल देते कहा था। ''मिस्टर सुरेश यह पुराना बिल है, सारा समान फैक्ट्री में लग चुका है। माल, चालान पर लेकर मैं आया था। इसे शीघ्र निपटा देना क्योंकि पहले ही काफी विलम्ब हो चुका है।''

मैंने कुछ भी नहीं कहा था, चुपचाप बिल लेकर उसे इन्द्राज करने से पूर्व चैक कर लेना बेहतर समझा था। पुरानी फाईल निकाल कर मैं उसका मिलान करने लगा तो स्तब्ध रह गया। उस बिल का भुगतान फैक्ट्री द्वारा पूर्व ही किया जा चुका था। मैंने मैनेजर साहब को वह बिल दिखाते सारी बात बता डाली थी।

कौल साहब ने उसे पूछा तो पहले तो वह माना नहीं। यही कहता रहा कि ''माल वह खुद चालान पर लाया था। अब दुकानदार ने बिल दिया है भुगतानार्थ।''

''तुम अपना काम करो, मैं देख लेता हूँ। यह सामान की लिस्ट है जो तुम्हें आज लाना है। तथा यह दस हजार रूपये रख लो। मिस्टर 'लाल एण्ड सन्स' को पैमेण्ट कर देना तथा रसीद भी लेते आना।''

''ठीक है सर।'' मि0 सिंह का स्वर ठण्डा हो चला था। कुछ देर बाद कौल साहब ने मुझे बुलवा लिया था। उसी लिस्ट की फोटोप्रति मुझे देते हुए उन्होंने कहा था। ''यह लिस्ट मैंने सिंह को दी है। तुम दोपहर बाद बाजार जाना जब वह लौट आए तथा इन चीजों की स्थानीय बाजार से कोटेशन लेते आना। लेकिन इतना ध्यान रखना मिस्टर सिंह को इस बात का भान नहीं होना चाहिए।''

''ठीक है सर।'' मैने स्वीकार में गर्दन हिलाई थी।

जब वह लंच से पूर्व सारा सामान लेकर लौट आया तो मैं भी लंच करके बाजार निकल गया। मैंने स्थानीय बाजार में लगभग सारी दुकानों का सर्वे किया। फिर उन दुकानदारों से सभी वस्तुओं की बंद लिफाफे में कोटेशन भी लेता आया जो ब्रान्डेड प्रोडक्ट बेचते थे। मूल्य भाव दोनों तरह के अंकित थे। लोकल प्रोडक्ट तथा ब्रान्डेड प्रोडक्ट के। ताकि रेट में कितना अन्तर है जाना जा सके। मैंने वह सारे बंद लिफाफे आकर फैक्ट्री मैनेजर को दे डाले।

उसी शाम मुख्य प्रबंधक के पास मिस्टर सिंह की पेशी हुई थी। भीतर क्या वार्तालाप हुआ मात्र मिस्टर सिंह या फिर फैक्ट्री मैनेजर ही जानते थे। उसी दिन से उसे तत्काल सेवाभार से मुक्त कर दिया गया था। तथा उसका लोकल परचेज का कार्य भार मुझे तुरन्त सौंप दिया गया। जबकि मैं भण्डार अनुभाग का कार्य भी करता रहा, जो पूर्व करता आ रहा था लेकिन आज जब कौल साहब हजारों के कैशमीमों मेरे पास लेकर आए और कहने लगे ''इन सब की इन्द्राज रजिस्टर में तुरन्त कर डालो।'' मैंने मात्र इतना कहा था। ''सर यह सारी दवाईयाँ क्या आप के आफिस में रखी हैं। मैं चपड़ासी भेज कर मंगवा लूँ।'' इतना तो मैं जानता था कि दवाईयाँ फैक्ट्री में कार्यरत् मजदूरों तथा कर्मचारियों के लिए आती रही थीं। किन्तु एक साथ इतने कैशमीमों वह भी भिन्न – भिन्न तिथियों के बने हुए थे। मैं चौंका अवश्य था।

''यह तो सारे अडजस्टमेंट के लिए बनवाकर लाया हूँ। बस खानापूर्ति करनी है। देर मत करो। तुरन्त करके मेरे पास ले आओ।'' उन्होंने आदेशात्मक स्वर में कहा था मुझे।

मैंने बस इतना कहा था, ''यह फेक (झूठे) कैशमीमों हैं मैं इनकी इन्द्राज नहीं करूँगा।'' मैंने कैशमीमों वहीं पड़े रहने दिये थे।

''सोच लो, इस का क्या नतीजा होगा।'' इतना कहकर वह भुनभुनाते चले गए थे।

मैं इतना तो समझ चुका था कि मैनेजर मेरी शिकायत सीधे मुख्य प्रबंधक (मालिक) से अवश्य करेंगे। हुआ भी ऐसा ही था कुछ देर बाद मुझे बुलावा आ गया था। मैं गलत कार्य नहीं करूँगा। मैंने मन को समझाया, जो होगा देखा जाएगा । ज्यादा से ज्यादा क्या होगा। मुझे काम से निकाल देंगे। मैंने उनके कमरे में जाने से पूर्व दरवाजे पर खड़े होकर पूछा था। ''सर! क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?''

''चले आओ।'' उन का स्वर गूंजा था। मैंने उनके सामने खड़े होकर उन्हें सादर अभिवादन किया था।

''क्या बात है ? काम करने से इंकार क्यों कर रहे हो ?'' उन्होंने सीधा प्रश्न दागा था। वह अपने टेबल पर पड़ी फाईल देखते नीची नजर किए बोले थे।

''सर! मैंने काम से इंकार नहीं किया है। मात्र गलत कार्य करने से मनाही है।''

बात बीच में काटते वह तमतमाकर बोले थे–''यहाँ गलत काम होते हैं। क्या मतलब है तुम्हारा ? जो काम कौल साहब कह रहे हैं वह बिना देर किये तुरन्त निपटाओं जाकर। वह जैसा कहें वैसा ही किया करो। मैं जानता हूँ। तुम मेहनती हो। उन्होंने तुम्हारी तरक्की के लिए भी मुझे कहा है। फिर भी तुम उन्हें।''

''सर! बात यह है कि...।''

''मुझे कोई बात नहीं सुननी तुम्हारी। जैसा वह कहें वैसा करते रहो। अन्यथा जाकर अपना हिसाब करके तुरन्त यहाँ से काम छोड़कर चले जाओ।'' वह एकाएक गरजे थे।

मैं चुपचाप कौल साहब के चैम्बर में चला आया था। मैंने मायूसी में बस इतना ही उनसे कहा था।

''कौल साहब! मेरा हिसाब कर दें। मैं यहाँ काम नहीं कर पाऊँगा।''

''अरे! बैठो तो सही। बात को समझो। तुम कुछ भी नहीं जानते तुम क्या जानो, हमें सरकारी महकमों से फैक्ट्री के सारे काम कैसे करवाने पड़ते हैं। जहाँ भी हमें पाला पड़ता है। सरकारी महकमों के साहब तथा बाबू सभी कमीशन माँगते हैं। हमें देनी पड़ती हैं। नहीं देंगे, तो फैक्ट्री का काम रूक जाएगा। तो क्या होगा, जानते हो, सारे कर्मचारी मजदूर जाकर घर बैठ जाएँगे ? अब तुम मुझे यह बताओ, हम जो उन्हें रिश्वत देते हैं, क्या वह उन की रसीदें हमें देते हैं ? वह सारा धन जो ऐसे तरीके से खर्च होता है, उन्हें अडजस्ट तो करना ही है ना। मैं अपनी पाकेट से तो भर नहीं सकता? ठण्डे दिमाग से काम लो। तुम जरा सोचो। चुपचाप जाओ, जाकर अपना काम करो। वह कैशमीमों कल परसों कर लेना। चाहो तो एक–दो दिन छुट्टी कर लो, आकर कर लेना।'' उन्होंने मेरा माइण्डवाश करना चाहा था। इसलिए इतना लम्बा भाषण झाड़ा। लेकिन मेरे पर उनकी बातों का रत्तीभर भी प्रभाव नहीं पड़ा था। मैंने पुनः कहा था। ''मेरा हिसाब कर दें। जितने दिन की पगार बनती है दे दें बस।''

''जब तुमने ठान ही लिया, यहाँ काम नहीं करना तो सीधे मलहोत्रा साहब के पास चले जाओ और अपनी पगार के रूपये ले लो।''

मैंने मल्होत्रा साहब से बीस दिन की पगार के रूपये लिये और बाहर जाने लगा तो मैनगेट पर ड्यूटीरत सुरक्षाकर्मी ने मुझे रोकते कहा था। सर आप की चिट्ठी आई है इसे ले लें।''

मैंने पत्र लेते हुए उसे बताया। ''बलवन्त मैं यह फैक्ट्री छोड़कर जा रहा हूँ। मेरा कोई भी पत्र आए तो अपने पास रख लेना, मैं कभी भी आकर ले लूँगा।'' मैं इतना कह चला आया था।

मैं सड़क पर चलता सोच रहा था, अब क्या होगा ? मैंने घर से आया पत्र खोला और पढ़ने लगा। पिताजी ने लिखा था, माँ बीमार है उसे अस्पताल में भर्ती करवा दिया था। हो सके तो शीघ्र ही कुछ रूपये मनीआर्डर द्वारा भेज डालो। इतना पढ़कर वह यह सोचने लगा। यह जेब में पड़े सारे रूपये वह आज ही मनीआर्डर कर डालेगा। तभी मुख्य सड़क पर आते–आते वह आदमियों की भीड़ से घिर गया। जाम लगा था। उसने भीड़ में घुसकर देखना चाहा था कि मामला क्या है ? तभी वह सड़क पर पड़े युवा लड़के की लहुलुहान देह देखकर दंग रह गया था। पास ही उसका बाईक टूटा गिरा पड़ा था। समीप ही एक खाली बस खड़ी थी। लोग बातें कर रहे थे भीड़ में। ''बस ड्राईवर की गलती थी। उसने भागती बस से इसे टक्कर मार दी और तुरन्त भाग गया।'' तभी पुलिस चली आई थी। वह अपनी कारवाही करने लगे। युवा की देह ठण्डी होने लगी थी। तभी भीड़ भी छंटने लगी तो वह भी अपने कमरे की ओर चला आया था। वह चारपाई पर बैठकर अपनी जेब से वह रूपये निकालने लगा तो यह देखकर सन्न रह गया कि भीड़ में किसी ने उसकी जेब ही साफ कर डाली थी। वह पसीना पसीना हो उठा। कोई जेबकतरा रहा होगा, भीड़ का फायदा उठाकर जेब काट ले गया। उन रूपयों के साथ वह पत्र भी था जो पिताजी ने डाला था, वह भी वे ले गया।

''अब माँ का इलाज कैसे होगा ? कहाँ से भेजे वह पिताजी को रूपये। फैक्ट्री में कार्यरत उसके दोस्त तो उसे

उधार देने से रहे। वह जान चुके होंगे मैंने वहाँ से काम छोड़ दिया था। क्या करूँ– कहाँ जाऊँ ? वह सिर थामें बैठा रहा था। फिर भूखे ही रात को सो गया। न जाने उसे कब नींद आ गई थी।

प्रातः वह नहा–धोकर चाय पीकर काम ढूंढने निकल पड़ा था। उसने अन्य फैक्ट्रियों में जाना बेहतर समझा था । जहाँ भी वह गया वहीं उसे आवश्वासन ही मिला। कई कहते प्रार्थना पत्र छोड़ जाओं, काम होगा तो बुला लेंगे। अब तो रोज का यह काम बन गया था। वह रोज प्रातः उठकर सड़कें नापता रहता।

धीरे–धीरे घर में रखा राशन भी खत्म होने लगा था। मकान का किराया भी उसे चुकाना था। सब कैसे होगा। वह सोचता तो कोई राह सूझती नहीं थी। एक दिन वह काम की खोज में निकला था, लौटती बार उसका मन न जानें क्यों कर रहा था, कि अपनी उसी फैक्ट्री में भी होकर आए। शायद कोई दोस्त मदद ही कर डाले। वह सीधा मेनगेट पर डयूटी पर तैनात सुरक्षाकर्मी के कमरे में चला गया। उसने उसे देखते ही सल्यूट मारा था।

''साहब कहाँ थे आप इतने दिन ? मैं आप को ही खोज रहा था।'' वह उतावलेपन में था।

''ऐसी क्या बात है, बलवंत जी ? क्या हुआ, कोई काम था मुझसे ?'' उसने अपनत्व भरे स्वर में पूछा था।

उसने अपने टेबल की दराज से एक पर्स, लिफाफा तथा एक पोस्टकार्ड निकालकर देते कहा था– ''साहब! जिस दिन आप यहाँ से चले गये थे उस के दूसरे–तीसरे दिन कोई युवा लड़का आकर यह दे गया था। आपके बारे में पूछ भी रहा था। कहने लगा, जब आएं तो यह पर्स तथा लिफाफा उन को दे देना। इतना कहकर वह चला गया था शायद बहुत जल्दी में था वह। यह पोस्टकोर्ड तो बाद में आया था आप का।''

''कौन था, वह कहाँ से आया था। कोई पता वगैरहा भी दे गया था अपना ?'' मैं हड़बड़ाहट से भरा था। जान गया था, यह वही पर्स है जो भीड़ में किसी ने मार लिया था।

''साहब! उसने कुछ बताया भी नहीं और मैंने उससे पूछा भी नही ?'' सुरक्षाकर्मी ने इतना ही कहा था। मैंने उससे वह सब लेते हुए उसका धन्यवाद किया था। मैं किसी से मिले बिना ही चुपचाप अपने कमरे की ओर लौट आया था।

कमरे में आते ही मैंने अपना पर्स खोला तो उसमें दो रूपये पड़े थे। शेष उसने क्या उड़ा डाले। खर्च लिये होंगे। पिताजी की वह पुरानी चिट्ठी भी थी। पर्स में रखे फैक्ट्री का कार्ड न होता तो वह कैसे जानता कि किसका पर्स है। वह न भी देता तो मैं क्या कर लेता उसका ?

मैंने पिताजी का अभी आया पत्र पढ़ना चाहा तो पत्र पढ़ते–पढ़ते मेरी निगाहें जमकर रह गई। पिताजी ने लिखा था, बेटा तुम्हारे भेजे तीन हजार रूपये मुझे समय पर मिल गए, तुम्हारी माँ बच गई। स्वास्थ्य लाभ ले रही है। बेटे तुमने समय पर अगर रूपये न भेजे होते तो शायद तुम्हारी माँ...। वह जान गया कि पिताजी का क्या आशय रहा होगा कहने का ? लेकिन जब उसने मनीआर्डर भेजा ही नहीं तो रूपये उन्हें कैसे मिले। किसने भेजे उसके नाम से। कौन है उसका हमदर्द ऐसा। उसने दो–तीन बार वह पत्र पढ़ा। कहीं वह गलत तो नहीं पढ़ रहा। लेकिन पत्र की एक–एक पंक्ति स्पष्ट थी। जो सच्चाई ब्यान कर रही थी। यह क्या चक्कर है उसकी बुद्धि ने काम करना मानो बंद कर डाला था। तभी उसने वह बंद लिफाफा खोला जिस के बाहर उसका नाम लिखा था मात्र। भेजने वाले का कोई नाम पता नहीं था जो वह युवा लड़का दे गया था। क्या उसने लिखा क्या है। वह पत्र खोलकर पढ़ने लगा तो उसकी मुखाकृति पर अनेकों भाव तैरने लग उसने बिना किसी सम्बोधन के पत्र शुरू किया था। उसने जो मुझे लिखा था वह अक्षरशः यहाँ दे रहा हूँ। सारा पत्र आड़े तिरछे शब्दों में अटा पड़ा था।

तुम्हारे पर्स में बाईस सौ रूपये थे। उस दिन तुम्हारा पर्स उड़ाकर जब देखा तो रूपये देखकर मन को प्रसन्नता मिली। सोचा तगड़ा हाथ मारा है अन्यथा आजकल लोग पर्स में मात्र दवाइयों की पर्ची तथा टेलीफोन नम्बर के कागज ही रखते हैं। या फिर पचास सौ रूपये ही। लेकिन जैसे ही तुम्हारे पिताजी का लिखा पत्र पढ़ा तो सारी खुशी ठण्डी पड़ गई। तुम्हारी माँ की बीमारी का समाचार पढ़कर अनायास ही अतीत की कटु यादों ने मुझे रूला ही दिया था।

मैं अपनी विधवा माँ का इकलौता बेटा हूँ। मेरी माँ मजदूरी करती थी। लोगों के घरों में जूठे बर्तन धोने, उन लोगों के कपड़े धोना झाड़ू–पोंछा करना यही काम था उसका । एक टूटी–फूटी पुरानी झोपड़ी में हम रहते थे। फिर भी माँ किसी न किसी तरह मुझे पढ़ा रही थी। शाम को लौटती तो बची–खुची रोटी ले आती। तथा कभी कभार पुराने कपड़े भी जो मेरे काम आ जाते थे। माँ अक्सर बीमार रहने लगी थी। लेकिन वह बराबर लोगों के घरों में काम करती रही। सरकारी अस्पताल से दवाई ले आती थी कभी–कभी। लेकिन माँ की सेहत लगातार गिरने लगी। फिर लोगों ने उसे काम देना ही बंद कर डाला। वह बेदम–भूखी प्यासी झोपड़ी में पड़ी रहती। मैंने स्कूल जाना छोड़ दिया था। लोगों से काम

माँगा। लोगों ने इंकार कर दिया। कहते तुम बच्चे हो काम नहीं कर पाओगे। आखिर भूखे भी कब तक रहा जा सकता है। नौबत भीख माँगने पर आ गई। थोड़े दिन आस–पडोस वाले दो–चार बासी रोटी दे देते थे। उसी से काम चलता था। एक दिन माँ की साँसे थमने लगी तो मैं घबरा गया था। किस तरह माँ को पड़ोस वाले लोगों की सहायता से अस्पताल पहुँचाया था। डॉक्टर ने दवाइयाँ लिखी जो बाहर से लानी थी। मैं वह दवाई की पर्ची लेकर केमिस्ट से दवाइयाँ लेकर बिना पैसे दिये हुए भाग पड़ा था। लेकिन उसके आदमियों ने मुझे पकड़ लिया तथा मारा–पीटा भी दवाइयाँ भी छीन ली। रोता हुआ – बुझे मन से जब अस्पताल पहुँचा तो माँ परलोक सिधार चुकी थी। मेरा तो जहान ही लुट गया। नगर पालिका वालों ने माँ का दाह– संस्कार कर डाला। दूसरे–तीसरे दिन ही एक गुण्डेनुमा आदमी ने मुझे दो सौ रूपये देते कहा था। ''जा, जाकर काम ढूंढ, लौटकर इधर मत आना।'' जाते–जाते उसने मुझे लात मारी थी। ''साला.....कामचोर... हरामी की औलाद।'' मैं तब से फुटपाथी लोगों के साथ हूँ। एक पाकेटमार ने दयाकर के मुझे पाकेट मारने का गुर सिखा दिया। ''बेटा ऐश करोगे। नोटों में खेलोगे।'' लेकिन गुरू दक्षिणा के रूप में उसने मेरे दो सौ रूपये झपट लिए थे। तब से यही धन्धा है मेरा। इन्हीं अन्धी गलियों में भटकते–भटकते मैं इन्सानियत भी भुला बैठा था। तुम्हारे पिताजी का पत्र पढ़कर माँ की बीमारी की खबर ने मेरी आत्मा को जगा दिया।

मैंने तुम्हारे पर्स से मात्र दो हजार रूपये निकाले तथा अपने पास से एक हजार रूपया और मिलाकर कुल तीन हजार रूपये तुम्हारे नाम से तुम्हारे पिताजी को मनी आर्डर द्वारा भेज दिये। दौ सौ रूपये तुम्हारे पर्स में पड़े हैं। मुझे माफ करना। लेकिन मैं इतना तो समझता हूँ कि माँ किसी की भी हो, होती तो वह माँ समान ही है। भगवान करें तुम्हारी माँ को कुछ न हो। इसी कामना के साथ एक अभागा।

पत्र पढ़कर मेरी आँखो से आँसू बहने लगे थे। पत्र में मानों दर्द का सागर हिलोरे ले रहा था। उसने न तो अपना नाम और न ही अपना पता ही लिखा था। अगर लिखा होता, तो एक बार मैं उससे अवश्य मिलना चाहता। उसने सच ही तो कहा था। माँ तो सब की माँ समान ही तो होती है। माँ शब्द में कितनी महानता छुपी है। उसने पत्र को पुनः पढ़ना चाहा था, किन्तु न जाने क्यों सारे अक्षर धुंधलाने लग पड़े थे। उसकी आँखों से झरती बूँदों ने शब्दों को बिल्कुल धुन्धलाकर डाला था।

दरवाजा

मदन आचार्य
गणेश मंदिर के पास
फ्रेजरपुर, जगदलपुर
छ.ग.
मो–9424279880

वर्षों से खड़ा है
दरवाजा, तिलचट्टा, मटमैला।
यथार्थ से बाहर
कल्पना में जाना हो तो
पेड़ दिखाई देता है हरियाली।
कल्पना से यथार्थ की
पकड़ना हो राह तो
फिर खड़ा है
वर्षों से
दरवाजा तिलचट्टा, मटमैला।
वर्षों से खड़ी हैं दीवार
बिना रंग रोगन की
इनके भीतर रहते हुए
मेरे स्वप्न हैं,
फुदकती हैं अट्टालिकाएं।
निकलता हूं बाहर तो
पृथ्वी का भरा–पूरा हिस्सा
घर की शक्ल में
बदल जाता है।
वर्षों से ढंके हैं
बेढंगे परदे
ढंके हैं मेज टेबल
उनके बाहर जाने की
कल्पना से चटक पड़ता है कपास
पेड़ दिखाता है कूबड़
सामने पड़ ही जाता है
बूढ़ा बरगद
जहां झूलता रहता है सारस
प्रायः मेरी आंखों से होकर
मैं मुदित हो जाना चाहता हूं
पास सारस के
लेने धवल दूध नाखून में
झट नाखून रक्ताभ होते हैं।
पास बह रही हैं
मटमैली शिथिल सी नदी
मेरी उबासियों से निकलकर
बदरंग बादल बरस पड़ता है
कभी–कभी
भीगता रहता हूं भीतर भीतर।

दिक्कत यह है कि
इस कठिन दौर में
मुझे खुश रहने के लिए
बच्चे/सारस/बादल/नदी
से बाहर किया जा रहा है।
दुखी होकर फिर लौट जाता हूं
वर्षों से खड़ा है
दरवाजा
तिलचट्टा, मटमैला मेरे स्वागत में।

चरैवेति – चरैवेति

वह अक्सर उदासियों में डूबा रहता था। उसे हमेशा लगता कि जीवन नीरस है, जीना व्यर्थ! सुबह होती, शाम होती, जिंदगी यूँ ही तमाम होती। वह हर सुबह गमगीन, हर रात उदासियों के हवाले! उसे हर समय मायूसी घेरे रहती। जब भी उसने जिंदगी को तरतीब देनी चाही, वह बेतरतीब होती गई। वह समय को यूँ ही व्यर्थ गँवाता रहा और आस्था विश्वास से परे होता गया।

उसे न ईश्वर पर आस्था थी, न किसी और पर। जीवन पर अनास्था–अविश्वास का मारा वह निरंतर अपने समय को व्यर्थ गँवाता चला जाता, यदि उसे उसके बिछड़े दोस्त ने उसका साथ न दिया होता।

बचपन में ही वे जब अलग–अलग हो गए थे, तभी से उसके अंदर एक वैराग्य सा समा गया था। तभी से वह ऐसा हो गया था।

लेकिन नए शहर में आने के बाद अचानक वह चौंक गया। उसका नया मित्र उसी पार्क में उसी बेंच के किनारे बैठा चहचहाती चिड़ियाँ को देखे जा रहा था।

पहले तो उसने गौर नहीं किया फिर उसे लगा कि वह उसे पहचानता है। उसने ध्यान से उसकी ओर देखा – हाँ! एकदम वही........ वही है।

''क्या तुम अमरेश.......?'' उससे रहा नहीं गया। उसने वाक्य अधूरा छोड़कर उसकी ओर एकटक देखते हुए पूछा।

उड़ती चिड़ियों को देखता अमरेश मुड़ा ''हाँ तुम ...... अरे ! तुम?''

दोनों के गालों पर कट का निशान! यह पहचान का कारण ! कभी खेल – खेल में नीब से दोनों ने एक–दूसरे के गालों पर अपना–अपना नाम खोदना चाहा था। उसी कोशिश में गहरे घाव बन गए थे। दोनों का हाथ एक साथ अपने–अपने गालों पर चला गया।

उसे लगा, अब वह फिर से जी उठेगा।

000000000

उसका सोचना कुछ हद तक सही था। लेकिन वह अपने ऊपर छाई मायूसी, अनास्था को दूर करने में अब भी सक्षम नहीं था। वजह एक और थी।

तीस की धुंधवाती उम्र में उसे अब तक नौकरी नहीं मिली थी। पढ़ाई में औसत था। अमरेश के वियोग ने उसका मन पढ़ाई से भी उचाट कर दिया था। अतः उसको जिस तरह की नौकरी की तलाश थी, वह मिली नहीं। और वह समझौता करने का पक्षधर नही था।

याने फिर वही ...... जीवन में आस्था – विश्वास की कमी।

एक दिन अमरेश ने उसकी हालत देखकर उसे एक सुझाव दिया।

''तुम डायरी लिखा करो। उसमें अपने सारे एहसास उड़ेल दो। मन की पर्तों को तुम हम सबसे शेयर कर नहीं सकते तो डायरी के हवाले करो।''

अनिता रश्मि
401 ए0 समृद्धि, चौबे पथ,
अनंतपुर, राँची – 834002
(झारखण्ड)

''...... उँहू!'' अविश्वास–अनास्था, मायूसी की बातें नहीं। भरोसा, आस्था से भरी बातों को डायरी में दर्ज करो। मैं तो ऐसा ही करता हूँ। अमरेश के खिलखिलाते चेहरे को उसने उसकी कामयाबी की वजह माना था। उसे लगता था अब....... मिलने के बाद कि वह अपने काम में इतना कामयाब है, इसी से इतने उमंग से भरा है।

खैर! उसने डायरी में मन को उड़ेलना शुरू कर दिया ।

11.3.14

मैं सबेरे उठा। घूमने गया। योग किया दिनभर टी0 वी0 में व्यस्त रहा। शाम को फिर घूमना। शाम ढली/खाया–पिया सो गया।

इस तरह की दो–चार स्थितियों के लिखने के बाद उसे स्वयं लगा, वह कर क्या रहा है। फिर उसने गौर से चीजों–बातों स्थितियों का अध्ययन करना शुरू कर दिया।

15.7.15

सब कहते हैं, जो बड़े होते हैं वे एक दिन पिता बन जाते है। लेकिन आज जब बड़े भैया गले से लगाकर रोए..... टूटकर बिखर गए, मैं छोटा होते हुए भी उन्हें सांत्वना देता रहा... सोचता रहा, आखिर यह अंतर क्यों...... मैं उनकी पीठ थपथपाता रहा। मन में घोर निराशा थी लेकिन अचानक बड़ा हो गया, बहुत बड़ा, जितने कि पिता थे ...... कहना न होगा, उसी दिन पिताजी की मौत हुई थी। मैं बड़ा हो गया, भैया छोटा!

21.08.15

काम के सिलसिले में मुंबई गया था। देखा, फास्ट ट्रेन में चढ़ी एक महिला, एक युवती बेहद बदहवास है उनके साथ दो बच्चियाँ भी हैं। उनके साथी प्लेटफॉर्म पर ही छूट गए थे। मुंबई के बारे में एक बात प्रचलित थी, ''टेम नहीं। टेम नहीं है।'' कहकर सब भाग लेंगे पर टाईम बताने की भी फुरसत नहीं उन्हें। मैंने ऐसी जगह में उनकी मदद करनी चाही। वह जिस स्टेशन पर उतरी, मैं भी वहीं उतरकर पीछे छूट गए उसके घरवालों का इंतजार करने लगा। वह डरी हुई थी, पर अपने डर को छिपाकर आत्मविश्वास प्रकट कर रही थी।

उसने एक और व्यक्ति से भी मदद माँगी, हम दोनों को देर तक साथ बिठाए रखा, संभवतः किसी एक पर भरोसा नहीं। रात बारह बजे सुनसान स्टेशन पर वह बार–बार अपने बैग खोलकर चेक करती। मैं उसे कहाँ ले जाऊँ, खुद पता नहीं। वह बाहर जाने को तैयार भी नहीं थी। मैंने स्टेशन मास्टर के पास जाकर उसके परिजनों का ब्यौरा दे दिया कि एनाउंसमेंट करा दे। साथ का व्यक्ति जा चुका था उसे दूर जाना था ।

तभी एक फरिश्ते की तरह एक व्यक्ति सामने आया। उसने आधी रात तक चारों तरफ आदमी दौड़ा दिए जहाँ वह ठहरी थी, जिधर उसे जाना था। वह लगातार उसकी मदद करता रहा। पर दूर–दूर रहकर। उसकी व्यस्तता के कारण दो–तीन घंटे बाद हर तरफ से उसके परिजन उसे खोजते हुए आ गए। अपने शहर के अतिथि को परिजनों से मिलाकर वह काफी प्रसन्न दिखा। महिला को लग रहा था, उसका पैर छू लेगी।

23.06.16

15 दिन पहले हाथ का ऑपरेशन हुआ। मन में एक ही बात चल रही थी, कैसे दायाँ हाथ ठीक हो और मैं कविता लिखूँ। हड्डी के ऑपरेशन ने नेल, नट–बोल्ट से जड़ दिया था। लिखना एकदम बंद हो गया था। एक बार कोशिश भी की थी लेकिन कागज के छोटे टुकड़े को भी दो उँगलियों से थाम नहीं पाया। एक यही तो अपने पास की सबसे बड़ी पूँजी थी। उसे भी गँवा दूँगा ? अपने आप से पूछता रहा। लेकिन डॉक्टर का आश्वासन था, आप फिर से सब काम कर पाएँगे, निश्चित रहें। उनके आश्वासन से मेरा टाइम कट नहीं रहा था। अस्पताल के बेड पर पड़े–पड़े पीपल के पेड़ पर बैठने वाले विभिन्न प्रकार के पक्षियों की चहचहाहटें एवं उनके आवागमन में कितना मन बहलता। मैं हर दिन बस कलम की चिंता में रहता।

और घर लौटने पर पीपल के पेड़ पर चहचहाते पक्षियों का अनुभव भी घर लेता आया। नए–नए पक्षी...... हर पल जैसे वार्तालाप करते हुए। उन्हें ही संबोधित करते हुए कविता की चंद पंक्तियाँ जेहन में बुलबुला रहीं थीं। बीस दिन के बाद हाथ में कलम थामी। कलम से आड़ी तिरछी रेखाएँ निकली और उन्हें आड़ी–बाँकी रेखाओं ने एक कविता रच डाली। इस खुशी के आगे सब खुशी कम! इस खुशी के आगे सब गम कम! कब कविता की लत लगी, पता ही नहीं चला। कहाँ कागज का एक छोटा टुकड़ा भी नहीं पकड़ पाया था, कहाँ ....

20.07.16

आज पूर्णतः स्वस्थ हूँ। सबेरे–सबेरे बाहर लॉन में निकला। वहाँ ओस से नम हरी–हरी घास पर घूमते हुए अचानक निगाह बगल के घर में घुसने वाले उस व्यक्ति पर पड़ी। जब तक उसे गौर से देखता, वह बैसाखी के सहारे घर के अंदर जा चुका था। कौन ? दिमाग में अटका रहा।

21.7.16

मैं फिर आज टहल रहा था। देखकर चौंक उठा। वही बैशाखी, वही व्यक्ति! लेकिन आज मैं उसे पीछे से नहीं सामने से देख पाया। वह धीरे–धीरे आगे आता हुआ मुझे नज़र आ गया था। मैं एकटक उसे देखे जा रहा था। वह एक सामान्य मजदूर था, मेरा पड़ोसी नहीं। आश्चर्य एवं सुकून की बात यह नहीं थी। आश्चर्य एवं सुकून की बात थी, वह अपने मुड़े हुए पैर में एक बाल्टी फँसाये आगे बढ़ते हुए उस घर के अंदर चला गया था। भरी बाल्टी का बोझ अपने टेढ़े घुटने में फँसाए वह अपंग किस तरह बैसाखी के सहारे काम कर रह था, यह मेरे लिए खुशी की ही बात थी। मैं देख नहीं पाया लेकिन शायद उसके हाथ में भी एक छोटी बाल्टी थी। शायद......... ।

22.7.16

शायद नहीं। सच में उसके हाथ में भी ......। मैं गौर से उसे देखता रहा। यह बहुत ही त्रासद..... नहीं सुखदायी लगा मुझे। जीने की जद्दोजहद से भरा वह व्यक्ति कितनों के लिए प्रेरणा बन सकता था। उसके चेहरे की मुस्कान उसकी अपंगता पर हावी थी। स्वाभिमान से भरा दिप्त चेहरा ! उसकी चमकती आँखें अपने लक्ष्य पर। उसका लक्ष्य, उस घर की जरूरत को हँसते–हँसते पूरा करना.... मैं पहचान गया, वह सिद्धू था। बहुत पहले पड़ोसी ने मदद की थी और अब वह उसका प्रत्युत्तर दे रहा था। साफ था यह काम वह पैसों के लिए नहीं कर रहा था।

30.8.16

अमरेश! ऐसे कितने ही प्रसंग, जो दिल को छू जाते हैं, मेरे मन में कैद हैं। मैं उस महिला को तो कभी भूल ही नहीं पाया..... कितना आत्मविश्वास था चेहरे पर। बच्चियों तक उसने डर के एहसास को पहुँचने ही नहीं दिया था। उधर 'टेम नहीं है' कहने वाले शहर के लोगों ने उसे परिजनों से मिलाकर ही दम लिया था, उन्हें भी नहीं भूल पाया मैं।

अमरेश! फिर से तुम यहाँ से चले गए थे, लेकिन अब हम जब भी चिट्ठियों से जुड़ते हैं तुम्हारे प्रयासों की याद आ जाती है। मैं अपने जीवन में फिर से उमंग भरने के लिए हमेशा याद करूँगा। अब मेरे हाथ में कलम, कंधे पर कैमरा और जीविका के लिए बिजनेस भी है। सच! जीवन चलने का नाम है। ऋषि–मुनियों ने यूँ ही नहीं कहा था – चरैवेति! चरैवेति!

फर्क

रीना मिश्रा 'रश्मि'
श्री रविन्द्र मिश्रा
ग्राम कोकन,
पोस्ट–चोरौत
वाया–जनकपुर रोड़,
पुपरी
जिला–सीतामढ़ी बिहार
मो.–9155774446

''रे सुजीतवा, जो तऽजल्दी जटहू साह के दुकान से दस किलो मिठाई ले के आ।'' रामाश्रय अपने बेटा सुजीत की हथेली पर बारह सौ रूपये रखते हुए बेताबी से बोला।

''दस किलो मिठाई ....?'' सुजीत रूपये मुट्ठी में बाँधते हुए आँखें फाड़–फाड़ कर अपने पिता को निहारने लगा। उसे महान आचर्श्य हो रहा था। दस किलो मिठाई बापू क्यों मंगवा रहे हैं? उसके मुँह में पानी भर आया।

''अरे उ सांसद महोदय दिल्ली से आ रहे हैं न। आ उ लोग जो अपने दरवाजे पर आवेंगे, तब उनका स्वागत–सत्कार करना है कि नहीं।'' रामाश्रय ने अपने बेटे की जिज्ञासा शांत करते हुए कहा।

''आं.....हाँ....हाँ......, उनका स्वागत तो करना ही होगा। उनके साथ तो उनका हाली–मुहाली भी होगा। उ सब ससुरा को खिलाना पड़ेगा।'' सुजीत ओठों में बड़बड़ाता हुआ बाहर की ओर भागता चला गया। उसका दिल कसक उठा–इत्ता मिठाई बापू कईसा राक्षस है सब? पिछली बार रामउदास बाबू के घर पर आया था..... उनका काफिला, बीस किलो मुर्गा का रान चबा गया। उनलोगों द्वारा फेंकी गयी हड्डी को कुत्तों ने भी सूंध कर छोड़ दिया।

सुजीत के जाते ही रामाश्रय दरवाजे पर उग आये घासों को काटने लगा। उसकी बारह साल की बेटी गुड़िया आंगन बुहार रही थी। हाथ में झाडू लिए वह अपने बापू के सामने खड़ी हो गई। उसके कानों में बापू और भईया की बातें पड़ चुकी थी।

''बापू ....इ सांसद का होत है?'' अपनी आँखों की पुतलियाँ नचाती हुई उसने कौतुहल से पूछा। रामाश्रय चौंक पड़ा। वह थोड़ा खीझे हुए स्वर में अपनी बेटी को झिड़कने लगा –

''तू अभी बच्ची है.....नहीं समझेगी। जा, जाकर अपना काम कर।''

''नहीं हमको बताओ न बापू...।'' गुड़िया अपनी जिद पर अड़ गयी।

''ओफ्, ओह तू तो एकदम से मेरे पीछे ही पड़ गयी।'' रामाश्रय अपनी बेटी के हाथ से झाड़ू छीनते हुए उफन पड़ा – ''सचे कह रहा था रामफल, बेटी की जात को सर पर मत चढ़ाओ, बहुत भारी पड़ेगा।'' गुड़िया कुछ न समझी और बकर–बकर अपने बापू का मुँह निहारने लगी।

''अरे नाशपिटी, तू इहाँ का कर रही हैं?'' तभी उसकी माँ सुबतिया वहाँ आ गयी और अपनी आँखें तरेरती हुइ उस पर बरस पड़ी – ''जा, जाकर आंगन बुहार। आधा आंगन बुहार कर छोड़ आई है मेरे लिए। कहीं अधकपारी हो गया तो?''

''नहीं .....।'' गुड़िया दृढ़ स्वर में बोली–''जब तक आप लोग हमको बताओगे नहीं, तब तक हम कुछो नहीं करेंगे।''

''हे भगवान। अईसन ढीठ लड़की तऽ हम कहूँ नहीं देखे ....सांचे कह रहे हैं सुजीत के बापू यह सब हमरे लाड़–प्यार का नतीजा है। एक दिन यह छोरी हमरी नाक कटवा के रहेगी।'' सुबतिया की आँखें क्रोध से दहक उठी। मगर गुड़िया टस से मस न हुई। उस मासूम को अन्दर ही अन्दर इस बात का भी रंज था कि माँ और बापू भईया की बड़ी बड़ी गल्ती पर भी नहीं डांटते और उसे बात–बेबात पर डपट दिया करते हैं.. क्यों? रामाश्रय को लगा, यह जिद्दी लड़की बिना सांसद महोदय के बारे में जाने पिण्ड न छोड़ेगी। वह थोड़ा नम्र पड़ गया और उसे समझाते हुए बोला–''सुन. ... सांसद जन प्रतिनिधि होते हैं। इनको हमलोग वोट देकर जिताते हैं और इ लोग दिल्ली के पार्लियामेन्ट में बईठ के जनता की समस्याओं को सुलझाते हैं। समझी न, अब जा, जाकर घर आंगन की अच्छी तरह से सफाई कर दें। कहीं वे लोग अन्दर आ गये तब गंदगी देख लेंगे और हमारी नाक कट जाएगी।'' गुड़िया अपने बापू की बातों से संतुष्ट न हुई और अकचकाती हुई बोली–

''बापू.....हमें कौन सी समस्या आन पड़ी है जो वे सुलझावेंगे ?'' गुड़िया आराम से मचिया पर बैठ गयी। सुबतिया मन ही मन जलने भुनने लगी–'' ई छोकरी तो कुछो बुझवे नहीं करती है। लड़की की जात है, घर का कामकाज करेगी या ई नेतागिरी करेगी ?''

''नहीं.... हमारी तो कोनो समस्या नहीं है। अपने गाँव में बिजली नहीं है न, सबको दिक्कत है। उहे सुलझाने के वास्ते उ इहां आ रहे हैं।''

''तऽ उ लोग हमरे घर पर काहे आ रहे हैं?'' फिर सवाल उछाल दी गुड़िया ने। तंग आ गया रामाश्रय अपनी बेटी के सवालों से। इस बार जबाव सुबतिया ने दी–''काहे कि तुम्हारे बापू उ पारटी के नेता हैं, जोना पारटी के सांसद आ रह हैं।''

''तो का गाँव में अउरो कोनो नेता नहीं हैं?''

''है, है काहे नहीं ..... बहुते है। मुदा तेरे बापू जो हैं, उ सबसे बड़का नेता हैं। उ का कहते हैं जी .... का हैं आप? अपने पति की तारीफ करती हुई सुबतिया गर्व से तन गयी।

''अपनी पार्टी के प्रखण्ड अध्यक्ष हैं हम।'' रामाश्रय भी अकड़ने लगा। गुड़िया अपनी माँ और बापू की बातें सुनकर हैरान रह गयी। उसने तो सुना था कि बड़े–बड़े लोग ही नेता होते हैं। उनके पास बंगला होता है, गाड़ी होती है। मगर बापू के पास तो कुछ नहीं है। फिर भी अपने बापू को बड़ा नेता जानकार उसके मन को संतोष हुआ और वह भी उन दोनों की तरह गर्व से सीना फुलाती हुई बोली– ''बापू तुम इतने बड़े आदमी हो, कभी बताये नहीं हमको?'' अपनी बेटी की मुँह से तारीफ सुनकार रामाश्रय थोड़ा और अकड़ गया और पत्नी की ओर देखते हुए मुस्कुराने लगा। सुबतिया भी हँस पड़ी।

''बापू तो हमरी समस्या का भी हल करावा दो न?'' अपने बापू और माँ को खुश देखकर गुड़िया भी चहकती हुई बोली।

''तुम्हारी कौन सी समस्या है भला ?'' दोनों पति–पत्नी अचरज से गुड़िया को देखने लगे।

''मुझे पढ़ना है। भइया स्कूल जाते हैं और हमको घर में रहकर काम करना पड़ता है।'' गुड़िया के दिल का दर्द चेहरे पर उभर आया। रामाश्रय के साथ साथ सुबतिया भी अवाक् रह गयी। वे दोनों खड़े–खड़े एक दूसरे का मुँह देखते रह गय। रामाश्रय को कुछ भी जबाव न सुझा तो तेजी से हंसिया चलाते हुए घास काटने लगा। मगर सुबतिया अपनी बेटी को प्रेम से पुचकारती हुई बोली– ''क्योंकि तुझे आगे भी तो यही काम करना है न बेटी। जब तुम्हारी शादी होगी तो ससुराल जाकर घर–गृहस्थी का ही तो काम करेगी। अभी तो तुम्हारी कोई समस्या नहीं है, मगर जब घर–गृहस्थी का काम करना नहीं आएगा तब समस्या ही समस्या होगी बेटी......। तू अपने मायके वालों को गाली सुनवायेगी।'' गुड़िया स्तब्ध खड़ी अपनी माँ की बातें सुनती रही। वह उसकी बातों का तात्पर्य तो समझ नहीं पाई। इतनी छोटी सी उम्र में भला वह ससुराल के अनुभवों को कैसे समझ पाती? मगर इतना तो वह समझ ही गयी कि ससुराल जाकर उसे यही सब करना है। उसे खामोश देख सुबतिया को विश्वास हो गया कि उसकी बेटी सारी बातें समझ चुकी है। वह उसे आदेश देती हुई बोली– ''जा गुड़िया बेटी, तू जाकर आंगन बुहार, मैं अपना काम करती हूँ।'' सुबतिया घर के अन्दर चली गयी और गुड़िया मचिया पर बैठी की बैठी रह गई। कुछ पल की खामोशी के पश्चात् वह अपना मौन तोड़ती हुई अपने बापू से पूछ बैठी– ''बापू..... क्या हम भी उ सांसद जी से मिलेंगे?'' रामाश्रय घास काटना छोड़कर उसे विचित्र नजरों से घूरने लगा। अचानक उसकी आंखे दहक उठी, जैसे वे प्रज्जवलित आंखे गुड़िया से कह रही हों – ''नहीं.....हर्गिज नहीं.....।'' उन अंगार हो चुकी आंखों को देख गुड़िया सहम गयी। रामाश्रय अपनी बेटी के सवालों से उब चुका था। अपनी उद्विग्नता मिटाने के लिए वह तेजी से घास काटने लगा। अपनी बापू की मनोदशा से बेखबर गुड़िया भी घास उखाड़ने लगी। उसने सोचा, घास उखाड़ते देख कहीं उसके बापू का मन बदल जाये और सांसद जी से मिलने दें।

''बापू, तो क्या सुजीत भईया भी सांसद जी से नहीं मिलेंगे?'' दबी जुबान में उसने पूछा।

''वह काहे नहीं मिलेगा.....वह तो लड़का है।''रामाश्रय अब घास उठा–उठा कर टोकरी में रखने लगा। देख अब तू मेरा भेजा मत खा। बस इतना समझ ले कि तुझमें और सुजीत में बहुत फर्क है।'' मासूम गुड़िया ने लड़का और लड़की में फर्क अब तक सिर्फ सुना था, महसूस पहली बार हो रहा था।

''बापू.....क्या फर्क है?'' वह रोनी सी सूरत बनाती हुई ठुनक पड़ी। रामाश्रय भैंस के तबेले की ओर जाते हुए ऊँची आवाज में गरज पड़ा– ''तुम लड़की हो। तुझमें लड़की वाले संस्कार होने ज्यादा जरूरी हैं। क्योंकि तुम्हें एक दिन पराये घर जाना है और सुजीत, सुजीत तो लड़का है, बेटा है, उसे यहीं रहना है। पढ़–लिख कर नौकरी करनी है। जब हमलोग बूढ़े हो जायेंगे, तब वही हमारी सेवा करेगा।'' अपनी बेटी को ऊँच–नीच समझा कर रामाश्रय भैंस को तबेले से बाहर निकाल दलान से दूर खूंटा में बांधने लगा। गुड़िया सोच में डूब गयी –तो क्या वह अपने माँ–बाप से भी अलग हो जाएगी ? वह तो इनलोगों की हर बात मानती है, घर का सारा काम–काज करती है, फिर भी अलग कर दी जाएगी?

''गुड़िया बेटी, जरा भैंस के तबेले का गोबर साफ कर दे।'' रामाश्रय ने चिल्लकार कहा। गुड़िया टोकरी उठाकर चुपचाप तबेले के अन्दर घुस गयी। गोबर उठाते समय उसकी आंखों से आंसू बहने लगे। उसने अपने बाल हृदय में, मन ही मन निश्चय कर लिया–''वह अपने माँ–बापू से कभी अलग नहीं होगी। सुजीत भईया की तरह वह भी पढ़ेगी।'' गोबर उठाकर वह ढ़ेर पर डाल दी और पुनः आंगन बुहारने चली गई। उसका मन रह–रह कर भारी हो रहा था। माँ और बापू की बातें दिल को कचोट रही थी।

''बापू......बापू.....।'' सुजीत हाथ में मिठाई की थैली लिये आ धमका। वह बुरी तरह से हांफ रहा था। लग रहा था जैसे दौड़ते हुए आया हो।

''क्या है रे....काहे इत्ता चिल्ला रहा है?'' रामाश्रय उसके हाथों से थैली लेते हुए बोला। सुजीत की आवाज सुनकर सुबतिया के साथ–साथ गुड़िया भी बाहर आ गई।

''बापू ...उ लोग आ रहे हैं।'' सुजीत की सांसे फूलने लगी।

''कौन लोग?''

''अरे ......उहे सांसद जी........अउर कौन ?''

''ओहो....... इतनी जल्दी आ गये। आरे बाप रे बाप! अभी तक त कोनो काम नहीं हुआ है?'' रामाश्रय बुरी तरह से नर्वस हो गया– ''अरी सुनती हो सुजीत की माँ।''

''हाँ जी.... हम त इंहे पर हैं।'' सुबतिया झटकती हुई अपने पति के सामने आ गई।

''ई लो मिठाई.......आ जल्दी से दालान को साफ–सुथरा करके चौकी पर सुजनी बिछा दो। बेटी गुड़िया तू अपनी माँ का हाथ बटाओ....... देखो कहीं हमरी नाक न कट जाये।'' एक ही सांस में रामाश्रय पूरी बात बोल गया। सुजीत बाहर की ओर भागना चाह रहा था कि रामाश्रय की नजर उस पर पड़ गयी। वह हलक फाड़ कर चिल्ला पड़ा–''अरे सुजीतवा. ......तू कहाँ भागा जा रहा है रे....?जा आस–पड़ोस से कुर्सियाँ ले आ और हाथ पैर–धोकर नया कपड़ा पहन ले। हम गाँव के अउर लोगों को बुल के ला रहे हैं।'' रामाश्रय तीर की तरह सनसनाते हुए गाँव की ओर भागता चला गया। सुजीत भी कुर्सियाँ लाने के लिए दौड़ पड़ा। सुबतिया और गुड़िया अपने–अपने काम में लग गयी।

माँ–बेटी ने मिलकर दालान को चमका दिया। सुजीत ने 30–32 कुर्सियाँ इधर–उधर से लगाकर सजा दिया और अपने बापू के आदेशानुसार सज–धज कर तैयार होने चला गया। जब वह नये कपड़े पहन कर इत्र छिड़क रहा था कि गुड़िया कि नजर उस पर पड़ गयी। वह मन ही मन कूढ़ने लगी। उसकी भी इच्छा हुई नये कपड़े पहन कर इत्र छिड़कने की, मगर काम से फुर्सत मिले तब ना! गाँव के गणमान्य लोग दरवाजे पर आने लगे थे। उसके बापू ने भी बगुले की तरह झक–झक करते कपड़े पहन लिये थे और हँसते हुए लोगों का स्वागत कर रहे थे। पड़ोस की कुछ औरतें भी सांसद जी को देखने के लिए उसके घर के अन्दर आ चुकी थी। गुड़िया नये कपड़े पहनने के लए तरस कर रह गयी। चलो कुछ और नहीं तो कम से कम हाथ–पैर धोकर अपने बालों को ही गूंथ लूं। कंघी लेकर वह बाल झाड़ने ही जा रही थी कि लपकती हुई माँ सामने आकर खड़ी हो गयी और असीम प्यार प्रकट करती हुई बोली–

''बेटी, वे लोग अब आने ही वाले होंगे, जरा चाय बना लें।

''अच्छा माँ.......।'' बाल गूंथना छोड़कर वह चाय बनाने रसोई घर में घुस गई। चाय की पतीली चुल्हा पर चढ़ा कर वह जैसे–तैसे अपने बाल संवारली। तभी उसके कानों में गाड़ियों के हॉर्न की आवाज पड़ी। वह खिड़की से झांककर बाहर देखने लगी। पाँच चमचमाती हुई गाड़ियाँ उसके दरवाजे पर आकर रूकी थी। तब तक चाय भी तैयार हो चुकी थी। गुड़िया तेजी से चाय छानकर प्यालियों में सजा दी। उसके मन में सांसद जी को देखने की ललक हिलोरें मारने लगी। उसे पूरी उम्मीद थी कि माँ का ट्रे लेकर उसे ही सांसद जी के पास भेजेगी। मगर ऐसा न हुआ। उसकी उम्मीदों पर पानी फिर गया, जब माँ के साथ सुजीत भईया रसोई घर में आया और फुर्ती से चाय की ट्रे उठाकर बाहर चला गया।

''माँ उन लोगों के लिए चाय लेकर क्या मैं नही जा सकती थी?'' उसकी आँखों में आंसू तैरने लगे।

''नहीं......।'' सुबतिया का स्वर पत्थर से भी अधिक कठोर थ।

''काहे......?'' वह तुनक पड़ी।

''काहे कि तू लड़की है और आजकल के नेताओं की नजरें अच्छी नहीं होती। खबरदार! घर से बाहर कदम भी रखा तो.....।'' माँ उसे सख्त हिदायत देकर बाहर की तरफ निकल गई। वह हतप्रभ खड़ी एकटक उसकी ओर देखती रह गयी। उसके कानों में माँ की आवाज गूंज रही थी– ''आजकल के नेताओं की नजरें अच्छी नहीं होती.........।''

अचानक उसे लगा जैसे उसके पूरे शरीर में अजीब सी सनसनाहट दौड़ने लगी हो। हठात् उसकी नजरें अपने वक्ष की ओर चली गई और उसे महसूस हुआ जैस एकाएक ही वह अबोध बालिका से पूर्ण युवती बन गई हो। जिस फर्क का एहसास उसे वर्षों तक न हुआ, वह एहसास आज क्षण भर में हो गया।

वजूद की तलाश

शगुफ़्ता यास्मीन काज़ी
नागपुर, महाराष्ट्र
फोन–9545588182

गायनेकोलॉजिस्ट की डिग्री हासिल करने के बाद पिछले एक साल की अपनी डॉक्टरी प्रैक्टिस में मैंने कई गर्भवती महिलाओं की गर्भ की सोनोग्राफी फिल्म देखी, रिपोर्ट पढ़ उन्हें बताया। कई डिलीवरियां, ऑपरेशन इत्यादि किये। सोनोग्राफी फिल्म व रिपोर्ट देखना मेरे लिए आम व मामूली बात तथा मेरे रोज़ के काम में शुमार है।

आज दवाखाने से घर लौटी देखा माँ कुछ पुराने पेपर्स के गट्ठे छांटने में उलझी हुई है। तभी मेरी नज़र एक पुराने से सोनोग्राफी के पैकेट पर पड़ी। जिज्ञासावश सहज ही माँ से पूछा,"माँ, यह किसकी सोनोग्राफी है?"

तब माँ का ध्यान उस पैकेट पर गया। उन्होंने ध्यान से उसे देखा, फिर उस पर लिखी तारीख़ पढ़ बताया, "अरे, यह तो मेरी बरसों पुरानी सोनोग्राफी रिपोर्ट है, जब तुम मेरे गर्भ में थीं, अब इसका क्या काम। इसे फाड़ फेंकती हूँ।"

अचानक मेरे मन में बिजली सी कौंधी, इससे पहले माँ उसे फाड़ फेंकती मैंने लपक कर वह पैकेट माँ के हाथ से ले लिया तथा फुर्ती से अपने कमरे में जा पैकेट से सोनोग्राफी फिल्म निकाली। बड़े ध्यान से तल्लीन हो कुतूहलवश उस सोनोग्राफी फिल्म में अपने वजूद को तलाशने लगी।

काव्य

प्यार

होंठों को सी लिया, नजरों को भी झुका लिया
दिल को धड़कने से रोक लिया
यादों के कपाट बंद कर लिए
क्या क्या जतन न किये इस दिल ने।
पर जैसे ही मिली तुझसे नजरें
जतन किये सारे धागे टूट से गये
दिल धड़कने लगा जोर जोर से
ठीक वैसे ही...
बकरी को शेर के आगे बांध कर
कहा गया हो
आराम से नरम नरम घास खाओ।

ममता जैन
सन्मति इलेक्ट्रीकल्स
दुर्गा चौक
जगदलपुर–494001
मो–9425507942

क्रांतिवीर गुण्डाधुर

डॉ. राम कुमार बेहार
अध्यक्ष, छत्तीसगढ शोध संस्थान,
370, बेहार मार्ग, सुन्दर नगर रायपुर छ.ग.
मो.–9826656764

बस्तर के सघन श्यामल वनों में, गुण्डाधुर एक विद्युत तरंग था।
उत्पीड़न, भय, आतंक के विरूद्ध, भगवान शंकर का ताण्डव था।

बस्तर में 1910 ई. में एक बड़ा विद्रोह हुआ, जो भूमकाल के नाम से जाना जाता है। उसका नायक गुण्डाधुर नामक धुरवा आदिवासी था। गुण्डाधुर न तो राजघराने का था न कोई जमींदार, न मांझी–मुखिया था, इस दृष्टि से देखने पर गुण्डाधुर का महत्व अधिक बढ़ जाता है। ऐतिहासिक सच्चाई है कि जब भी समय की मांग हुई, समय की पुकार हुई, नेतृत्व प्रकट हुआ। ओजस्वी, वीर, कुशल संगठक, नेतृत्व के गुणों से युक्त गुण्डाधुर बस्तर के भूमकाल का अविस्मरणीय पात्र था। गुण्डाधुर ने शक्तिशाली अंग्रेजी साम्राज्य से अपने बलबूते पर लोहा लिया। लाख प्रयासों के बावजूद अंग्रेज उसे जीवित या मृत नहीं पकड़ सके। मैसूर के टीपूसुल्तान की भांति उसे अंग्रेजी से सख्त चिढ़ थी, घृणा थी, किसी भी रूप में उनसे समझौता करना वह अपमानजनक समझता था। 1910 ई. के भूमकाल के बाद एक अनुमान के अनुसार वह बीस वर्षों तक जीवित रहा। लुकते–छिपते कष्टपूर्ण जीवन उसने काटा, मगर आत्मसमर्पण नहीं किया। बस्तर के इतिहास में गुण्डाधुर का नाम गौरव व सम्मान से लिया जाता है।

गुण्डाधुर आज भी हमें, लीजेण्ड पुरूष से लगते हैं।
बस्तर जैसे अंचल के, अनन्य पुरूष लगते हैं।

आजादी से पूर्व बस्तर एक रियासत था काकतीय वंश के राजा रूद्र प्रतापदेव राज कर रहे थे। पण्डा बैजनाथ दीवान थे। राजा को दीवान की सहायता से शासन करना था। सन् 1901 से 1010 की दशाब्दी को एक बड़े संघर्ष के लिए बस्तर में स्मरण किया जाता है। संघर्ष के क्षेत्र व गहनता दोनों दृष्टियों से यह व्यापक था। दक्षिणी कोण्डागांव, छोटे डोंगर के पूर्वी भाग से सुदूर दक्षिण में स्थित चीतलनार व सुकमा तक उत्तर से दक्षिण 136 किलोमीटर और पूर्व से पश्चिम 95 किलोमीटर का क्षेत्र विद्रोह से प्रभावित था। वनांचल में रहने वाली जनजातियां वनोपज पर निर्भर थीं। ब्रिटिश भारत भारत की सरकार ने वनों को आय के साधन के रूप में देख उन्हें आरक्षित करने का निर्देश दिया। अंग्रेजी शासन आदिवासियों में अलोकप्रिय था। राजा और प्रजा के बीच अंग्रेजों द्वारा नियुक्त दीवान था, जो प्रजा को राजा से मिलने में अडंगे डालता था। राजा को उसके सम्मान के अनुरुप राशि नहीं मिलती थी। बड़े खर्चों के लिए पॉलिटिकल एजेंट से अनुमति लेनी होती थी। शराब के ठेकेदारों से लोग त्रस्त थे। बेगार, बिसाहा से लोग परेशान थे। शोषण के भय से सड़क किनारे के गांव उजड़ गये थे। स्कूल मास्टर और मॉनिटर छात्रों को परेशान करते थे। 1910 में आकस्मिक रूप से विद्रोह फूट पड़ा।

राजा के चाचा लाल कालेन्द्रसिंह, राजमाता स्वर्णकुंवर, राजवैद्य तथा राज दरबारियों का आशीर्वाद विद्रोहियों को प्राप्त था। अंग्रेजी परतंत्रता वनवासियों को भारी पड़ रही थी। बस्तर से अंगेजी राज समाप्त करना गुण्डाधुर और उसके साथियों का उद्देश्य था। जगदलपुर के पास नेतानार नामक ग्राम में गुण्डाधुर का जन्म हुआ था। 1876 में बस्तर विद्रोह हुआ था। इसी साल जन्म लेने के कारण वह क्रांतिपुत्र था। सोमवार को पैदा हुआ अतः मूल नाम सोमारू नाम रखा गया।

अपने देश में अपना, राज यही तो वो माँग रहा था,
विदेशी लुटेरे अंग्रेजों से स्वतंत्र बस्तर चाह रहा था।

बस्तर में निवास करने वाली मुरिया, माड़िया, भतरा, परजा, हल्बा, धाकड़, गोंड़, महारा आदि ने इस विद्रोह में भाग लिया। गुण्डाधुर लम्बी–लम्बी यात्राएँ इतनी जल्दी करता था कि प्रचारित हो गया था कि वह उड़ना जानता है गोपनीय बैठक कर संकेत माध्यमों से आदिवासियों को विद्रोह के लिए तैयार किया। अंग्रेजी बंदूकों का भय दूर करने के लिए वह प्रचारित करता था कि तंत्र विद्या से बंदूक की गोलियों को पानी में बदल देगा। आदिवासी नेताओं की शक्ति बढ़ाने के लिए वह ताबीज भी बांटता था।

2 फरवरी 1910 को पुसपाल बाजार की लूट से इस भूमकाल का प्रारंभ होता है। इस तिथि को ही क्रांतिदिवस, गुण्डाधुर दिवस के नाम से मनाया जाता है यह न तो गुण्डाधुर का जन्मतिथि और न ही पुण्यतिथि है। क्रांति का प्रारंभ दिवस था। विद्रोह को दबाने के लिए पाँच सौ से अधिक अंग्रेज सैनिक सिपाही बस्तर पहुँचे, 75 दिनों तक इन लोगों ने दमन चक्र चलाया। आधुनिकतम अस्त–शस्त्र, सुनियोजित योजना, जमींदारों की सहायता से विद्रोह दबा दिया गया, 39 आदिवासी गोलीचालन में मारे गए। विद्रोह दबाने में अंग्रेजों के 60 हजार रूपये खर्च हुए, जिसे किश्तों में बस्तर रियासत से वसूला गया। बदले की भावना से प्रेरित अंग्रेजों ने चार आदिवासी गाँव जला डाले। अमानवीय हथकंडे अपनाए गए।

सैकड़ों को बेतों से मारा गया। सैकड़ों गिरफ्तार किए गए। प्रमुख विद्रोही आदिवासी नेता गिरफ्तार कर रायपुर जेल में रखे गए। गुण्डाधुर के नेतृत्व में खड्‌गघाट, अलनार में लड़ाई हुई, आदिवासी तीर, भाले, कुल्हाड़ी से अंग्रेजों की बंदूकों व मशीनगनों का सामना कर रहे थे।

20 वीं सदी में जब सारा भारत, था अंग्रेजी दास।
बस्तरियों ने संघर्ष कर रचा नया इतिहास।
यूं तो 1910 का विप्लव, शीशे व पत्थर की थी लड़ाई।
शीशे को तो होना था चूर–चूर, लड़कर बस्तरियों ने पाई बड़ाई।

गुण्डाधुर लगभग साढ़े छह फीट हट्टा–कट्टा नवजवान था, 34 वर्ष की आयु थी। हाथ में सदा नंगी तलवार रखता था। रंग उसका सांवला था। बस्तर के अनेक बुजुर्गों ने उसका यही हुलिया बताया था।

बस्तर, बस्तर में रहने वाले वनवासियों का है। इस युद्ध घोष से भूमकाल बलवती हुआ था। बस्तर के तत्कालीन दीवान पण्डा बैजनाथ को मार डालने की व्यूह रचना की गई थी। मगर दीवान के बस्तर से भाग खड़े होने के कारण योजना सफल नहीं हुई। अंग्रेजी दासता के प्रतीक 60 में से 45 स्कूल जला डाले गए। पुलिस चौकी, कांजी हॉउस, वन कार्यालय, तार की लाइनें विद्रोहियों के द्वारा नष्ट की गईं।

विद्रोह असफल रहा, मगर अंग्रेजों के लिए यह एक पाठ था। आदिवासी क्षेत्र की जागरूकता अंग्रेजों को परेशान करने वाली थी। इस विद्रोह का जननायक गुण्डाधुर समकालीन बस्तर में और इतिहास के पृष्ठों में अजर अमर हो गया। उसका नाम आदर, सम्मान व गौरव के साथ लिया जाता है। सन् 1910 में पैदा हुए बच्चों के नाम गुण्डा पर रख बस्तरियों ने उसे सम्मानित किया। दुर्भाग्यवश गुण्डाधुर अभी भी इतिहास का वह पात्र है जिसके साथ समाज, सरकार और साहित्यकारों ने न्याय नहीं किया। समय का तकाजा है ऋण से उत्ऋण होने का उपक्रम है गुण्डाधुर को इतिहास में वह स्थान दिलाया जाए, जिसकी वह पात्रता रखता है।

ग़ज़ल–1

तप रही धरती, सूरज की मनमानी देखो।
नदी नालों में सूख गया यहाँ पानी देखो।।

पेड़ पौधे नहीं रहे शेष अब धरा पर,
बिन पानी खतरे में सबकी जिंदगानी देखो।

जल जंगल जमीन जरूरत समय की,
बिन बारिश बंजर जमीन नुकसानी देखो।

खेती ही करता था कभी गाँव सारा,
गाँव छोड़ शहर भाग रही जवानी देखो।

बुजुर्गों की मेहनत जो मिला सबकुछ,
पास नही अब कोई हुनर खानदानी देखो।

ग़ज़ल–2

बेवजह मुस्कराते है, दर्द छुपाने के लिए।
महफिल में आया सिर्फ हँसाने के लिए।।

नमी क्यों है मेरी आँखों में मत पूछना,
इजाजत मिली है आँसू बहाने के लिए।

गजल मेरी तुमसे ये कहेगी देखना तुम,
हम रात भर जागे तुझे भूलाने के लिए।

चुरा कर नींद हमारी तुम तो चले गये,
हम थे अकेले खुद को मनाने के लिए।

अब आदत हमारी भी हो ये गई देखो,
नींद की गोली खाता हूँ सो जाने के लिए।

जिंदा हूँ जब तक मैं दुआ यहीं करूँगा,
दुख न आये कोई तुझे सताने के लिए।

मुकेश मनमौजी
सिवनी, छपारा
म.प्र.
मो–8871813171

डेरा

वृद्ध पति पत्नी, झुकी हुई कमर लकड़ी के सहारे खड़े हो, एक सूखे वृक्ष को बड़ी देर से देख रहे थे।

पास जाकर मैंने पूछा ''आप इस सूखे वृक्ष में क्या देख रहे हैं ?'' उस वृद्ध ने मेरी ओर कातर नजरों से देखकर कहा ''मैं सुखे वृक्ष और उस पर बनाये चिड़ियों के घोंसले, और चहचहाते हुए पक्षियों को देख रहा हूं। यह वृक्ष कितना भाग्यशाली है।''

मैने पूछा—''आप क्यूं ऐसी बाते कह रहे हैं ?

वृद्ध ने लम्बी सांसे लेकर कहा— ''मैं जवानी से लेकर आज तक इस वृक्ष को देख रहा हूं यह भी कभी मेरी तरह जवान था, इस वृक्ष में चिड़ियों के घोंसले थे आज भी है। यह सूखा वृक्ष इन चिड़ियों को हर मौसम में पाला है, मेरी तरह... मैंने भी अपने बच्चों की परवरिश, अच्छे से की थी, आज बेसहारा हूं। मेरे बच्चे मुझे छोड़कर अपना अलग डेरा बना लिए।''

''....?''

''इस सूखे वृक्ष और मेरे में अंतर यही है कि आज भी इस सूखे वृक्ष पर चिड़ियों का डेरा है, इनकी चहचहाट है, चिड़ियों ने अलग डेरा नहीं बनाया है। बस.....''

राजनीति

—लेखक—महेश राजा

जंगल के जानवरों ने सोचा कि उन्हें अपना राजा चुन लेना चाहिए। सभी जानवर विचार विमर्श करने के लिए एकत्रित हुए।

सियार ने कहा—''मैं रात भर चिल्ला चिल्लाकर लोगों को सावधान करता हूं इसलिए राजा के पद के लिए मैं ही सबसे योग्य हूं। इसलिए मुझे राजा बनाओ।''

अब चूहा कहां पीछे रहने वाला था। वह बोला—''मैं हर वस्तु कुतरने में माहिर हूं। मुझे अपने पैने दांतों पर पूरा भरोसा है। मुझसे अच्छा राजा कोई नहीं हो सकता।''

भेड़िया बोला—''मुझे अपने पंजों पर पूरा भरोसा है। इन पंजों से कोई नहीं बच सकेगा, इसलिए राजा तो मुझे ही बनाओ।''

तभी उन सबकी नजर वहां से गुजर रही एक मिमियाती हुई बकरी पर गई। सभी की इच्छा थी कि आज बकरी के स्वादिष्ट मांस का आनंद लिया जाये। भेड़िये ने बकरी की ओर ललचाई नजरों से देखा। सियार चालाक था, वह समझ गया, बोला—''ठहरो! इतने उतावले मत बनो। पहले चुनाव हो जाने दो। बकरी को तो इसी जंगल में रहना है। हमसे बच कर कहां जायेगी।''

दीवाली

दीवाली के दूसरे दिन प्रातः जब मैं भ्रमण पर निकला, देखता हूं एक भव्य मकान के सामने फटे पुराने कपड़ो में, अधनंगे से कुछ बच्चे, जलते हुए बारूद की चिंगारी को देख तालियां बजाकर खुशी से हुलस रहे थे साथ ही उनकी खुशियों में एक व्यक्ति भी शामिल था।

मैंने पास जाकर उस व्यक्ति से पूछा ''तुम लोग क्यूं चिंगारी देख खुशिया मना रहे हो।'' उस व्यक्ति ने कहा ''साहब ये बच्चे गरीब हैं। इनके पास फटाके खरीदने को पैसे नहीं है इसलिए दीवाली की रात इन बच्चों ने घूमते हुए देखा, इस भव्य मकान के सामने, विभिन्न तरह के ढेर सारे फटाके फुलझड़ी जलाया जा रहा था इनमें से कई फटाके फुलझड़ी नहीं जलते थे। आज सुबह अधजले फटाके, फुलझड़ी, इकट्ठा कर और इन्हे जलाकर दीवाली की खुशियां मना रहे हैं।''

नरेंद्र पाढ़ी
संयोजक बस्तर माटी
रहमान गली, जगदलपुर
मो.—9425536514

फोटो

पति की मृत्यु के पश्चात, देवकी लगभग विक्षिप्त सी हो गई थी। घर में धन दौलत की कमी नहीं थी। पति की अच्छी नौकरी थी। उन्होंने एक पैसा भी व्यर्थ नहीं गंवाया था। सभी बच्चों को अच्छी शिक्षा दी थी। जहां बेटियों को अच्छे घरों में ब्याहा था वहीं दोनों बेटों के लिए भी खूब पढ़ी लिखी और ऊंचे घरानों की बहुएं लाए थे देवकी के पति। फिर भी घर तो घर ठहरा। बहुओं के आने पर देवकी अपने ही घर में परायी हो गई थी। बहुओं के दुर्व्यवहार और बेटों का उस दुर्व्यवहार के प्रति अनदेखी करने पर व्यथित हो जाती थी देवकी और किवाड़ लगा लेती थी। ऐसा बहुत बार होता था।

छोटी बहू तुलनात्मक रूप से बड़ी बहू से ज्यादा चंट थी। एक दिन देवकी बहुत दुखी थी और अपने कमरे में किवाड़ लगाकर कुछ कर रही थी। तो छोटी बहू ने किवाड़ों की झिर्री से देख लिया था। सासु मां अर्थात देवकी बक्सा खोले बैठी थी। छोटी बहू की तीसरी आंख खुल गई थी।

'जरूर बक्से में धन दौलत है।' बस फिर क्या था छोटी बहू देवकी का बक्सा खोलने की जुगाड में रहने लगी थी लेकिन कभी भी सफल नहीं हुई।

तभी, एक दिन, देवकी हमेशा–हमेशा के लिए दुनिया छोड़कर चली गई। घर में रोना–पीटना मचा हुआ था रिश्तेदार, पड़ोसी और मित्र–साथी, देवकी के अच्छे व्यवहार पर आंसू बहा रहे थे कि...कि... छोटी बहू ने सभी की आंखों में मिट्टी झोंककर मृत देवकी की साड़ी के कोने की गांठ में बंधी चाबी निकाल ली थी लेकिन न जाने कैसे बड़ी वाली ने उसे ऐसा करते देख लिया था।

छोटी बहू धीरे से घर में आयी और सासु अर्थात देवकी के बक्से का ताला खोलकर बैठ गई थी। पीछे से बड़ी वाली भी अपने पति को लेकर पहुंच गई।

छोटी बहू बक्से में से देवकी की साड़ियां निकाल–निकालकर एक तरफ फेंकती जा रही थी और बुदबुदाती जा रही थी 'बुढ़िया ने गहने सबसे नीचे रखे होंगे.....हां नहीं तो।'

बक्से में सबसे नीचे एक छोटा सा पर्स मिला था। छोटी बहू ने पर्स खोला। उसे पता ही नहीं चला कि बड़ी वाली और उसका पति और न जाने कहां से छोटी बहू का पति भी आकर उसके पास ही खड़े हो गए थे और छोटी बहू को पर्स खोलते देख रहे थे। पर्स में एक भी पैसा नहीं था फिर एक पोस्ट कार्ड के आकार का फोटो मिला था। फोटो पर जगह–जगह निशान पड़े थे मानो किसी ने उस पर पानी की बूंदे डाली हों। फोटो चारों ने पहचान लिया था तभी बड़ा वाला बिलख पड़ा था। 'बाऊजी!'

अब चारों फोटो पर पड़ी पानी की बूंदों का अर्थ समझने में जुटे पड़े थे। बाहर देवकी के मृत शरीर पर लोग विलाप कर रहे थे।

उड़न छू

मैं, दीदी, राजू और बड़े भैया जब साथ–साथ बैठकर खेलते तो जीजी अम्मा को भी न जाने कहां से खोजकर ले आती और हम सब के साथ बैठा लेती थी।

डॉ. पूरन सिंह

240, बाबा फरीदपुरी, वेस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली–110008

मो–9868846388

फिर हम सब उड़न छू–उड़न छू खेलते थे। बड़े भैया से खेल की शुरूआत होती.....

बड़े भैया कहते– कुत्ता उड़।
कोई हाथ नहीं उठाता।
बड़े भैया कहते– बिल्ली उड़।
कोई हाथ नहीं उठाता।
बड़े भैया फिर कहते– गधा उड़ा।
फिर भी सब हाथ नीचे किए रहते।
और जब बड़े भैया कहते–चिड़िया उड़।

तब सभी हाथ ऊपर उठा देते। अम्मा हाथ उठाती तो उठाए ही रहती। हम सब अम्मा की ओर देखते कि अम्मा कब हाथ नीचा करे लेकिन अम्मा... अम्मा हाथ नीचा करती ही नहीं। हां, इतना जरूर था कि अम्मा हाथ उठाए–उठाए ही दीदी की ओर देखने लगती और एकटक देखे ही चली जाती। मैं देखता कि अम्मा की आंखो में कुछ तैरने लगता। बहुत देर बाद अम्मा अपनी धोती के पल्लू से उसे पोंछती और हमारा खेल बंद हो जाता। बाद में–

हम सब अम्मा को घेरकर बैठ जाते और अम्मा दीदी को अपनी दोनों बाहों में ऐसे भर लेती मानो डर रही हो कि कोई दीदी को उससे छीन न ले।

पुरूष

मिश्रा जी एक आफिस में नौकरी करते है। रोज अपने स्कूटर से आते–जाते है। उस दिन भी ऑफिस से घर आ रहे थे। उनके आगे–आगे एक बेहद सुन्दर सी महिला अपनी स्कूटी पर सवार हो स्कूटी उड़ा रही थी। उसने झीना सा पीले रंग का कटस्लीव कुर्ता और ब्लैक कलर की लैगीज पहनी हुई थी। जो मिश्रा जी को बाहर से जितनी आकर्षित कर रही थी उससे कहीं अधिक मन को परेशान कर रही थी। वे उसके पीछे–पीछे ही अपना स्कूटर दबाए चले जा रहे थे। एक बार तो वह महिला ऑरेंज लाइन पर क्रॉस कर दी थी लेकिन उस महिला का पीछा नहीं छोड़ा था। वे उसके पीछे–पीछे ही चल रहे थे और बहुत खुश थे। तभी...तभी...अचानक उन्हें ज्ञान प्राप्त हो गया। एक स्त्री उनके आगे कैसे चल रही है...वह तो उनसे जीतना चाह रही है.. अरे यह क्या.. नहीं..नहीं..अपनी आंखों को सुख देने के चक्कर में तो वे अपना पुरूषत्व ही भूल गए। स्कूटर दौड़ाते दौड़ाते उन्हें सारे वेद, पुराण और स्मृतियां झकझोरने लगे थे और उन पर थू–थू कर रहे थे। बस फिर क्या था.. उन्होंने स्कूटर चौथे गेयर में डाला और एक ही पल में वे उस महिला से आगे निकल गए थे। अब उनका सीना चौड़ा था।

यूं ही मिलते रहना

प्रहलाद श्रीमाली
42 (पुराना 31),
रघुनायकुलू स्ट्रीट
पार्क टाउन
चेन्नई–600003.
फोन: 044–23465297,
98
मो.: 09445260463

हर्ष के साथ आश्चर्य हुआ। लादू भाई यहां कैसे! दूर से वे बुजुर्ग शर्तिया लादू भाई लग रहे थे। वही औसत कद, इकहरा बदन, सफेद बाल, सरपट चाल और खादी का धोती–कुर्ता। कोई फर्क नहीं। यहां तक कि आंखों पर चश्मा भी नहीं। किंतु वे लादू भाई नहीं थे। एकटक उन्हें ताकता रहा। कदाचित वे टोक देते। यूं आंखें फाड़ कर क्यों घूर रहे हो! पर वे खुद में मगन मेरे पास से निकल गये। मैं मुस्कुराया।

लादू भाई होते तो टोक देते। बच्चों को चाय नहीं दूध पीना चाहिए! ठेले पर चाय का खाली गिलास रखते हुए चेतना जगी। अरे! अब मैं बच्चा कहां। छब्बीस साल का जवान हूं। वह तो दस–बारह साल पुरानी बात। लादू भाई वाला मोहल्ला छोडकर इतनी दूर इस इलाके में आने के बाद उस तरफ जाने की फुरसत इस विकट विकास जीवी महानगर में कहां से निकालता। इतने बरसों में तो लादू भाई बहुत बूढ़े हो गये होंगे। अलबत्ता बचपन से मैंने उन्हें ऐसा ही देखा। कोई फर्क नहीं। संभव है अब भी वे ऐसे ही हों।

करीब चार साल बाद मुझे फिर लादू भाई मिले। अर्थात् दिखे। वे भी लादू भाई नहीं थे। बस में सफर करते हुए वे वयोवृद्ध पहली झलक में स्पष्ट लादू भाई लगे थे। मैं पीछे वाली सीट पर बैठा था। और वे खचाखच भरी बस में आगे वाले दरवाजे से चढ़े थे। कंडक्टर द्वारा उन्हें पीछे बुलवा कर अपनी सीट पर बिठाया। वे बहुत प्रसन्न हुए, आशीर्वाद दिया। मैं मुस्कुराया। यदि वाकई लादू भाई होते तो खुश होकर कहते, मोहल्ले के बच्चों को संस्कारित करने के अपने प्रयत्न में वे सफल रहे! लादू भाई अब किस हाल में होंगे। सोचते हुए मैं भावुक होने लगा।

तीनेक बरस बाद सब्जी मंडी में झोला भर सब्जी उठाए जिन बुजुर्ग का मैंने दूर से दर्शन किया। वे लादू भाई कदापि नहीं हो सकते। यह जानते हुए भी संभावना जगी। कहीं वे सचमुच लादू भाई निकले तो! और मैं तेज चलकर उन तक पहुंचा। बहुत मनाने पर संकोच के साथ उन्होंने झोला मुझे थमाया। भीड़ भाड़ से निकलकर उन्हें रिक्शा में बिठाते हुए मुझे सुख मिला। साथ ही लादू भाई बहुत याद आए। मैं झुंझलाया। क्या यूं ही उम्र भर मुझे लादू भाई का भ्रम होता रहेगा। उनके घर जाकर पता लगाना चाहिए। वे अब तक बैठे हैं या परलोक सिधार गये। मन फिर पलटा। लादू भाई यूं ही जिंदगी भर मिलते रहें तो हर्ज क्या है। किंतु उनके प्रति उमड़ी प्रबल जिज्ञासा को तृप्त करना जरूरी था।

लादू भाई खाट पर लेटे थे। मुझे देखते ही उनकी आंखें चमक उठीं। उठते हुए उत्साह से मेरा हाथ पकड़ लिया, ''बैठ नवीन! आज तू ठीक आया!'' उनकी रहस्य भरी मुस्कान मानो कह रही थी कि इस लंबे अंतराल के दौरान हम बराबर मिलते रहे हैं। मुझे एकटक निहारते हुए उनके चेहरे पर सुख–संतोष की आभा थी। जाने क्यों, मुझे लगा पिछले बरसों में वे सब मुलाकातें लादू भाई के साथ ही हुई हैं। या फिर इन्हें उनकी पूरी जानकारी है। जब तक वहां रहा, उनकी नजर बराबर मुझ पर टिकी रही। विदा लेते समय बोले, ''यूं ही मिलते रहना! चेहरे पर वही गहरी मुस्कान।

मैं चकित था और उलझन में भी। उन्होंने ''आते रहना!'' क्यों नहीं कहा। लौटते हुए मैं उतावला हो रहा था। लादू भाई फिर कब मिलेंगे।

लघुकथा

गुरूकुल

सुश्री उर्मिला आचार्य
पंच रास्ता चौक,
ब्राहमण पारा सुभाष
वार्ड, जगदलपुर
पिन–494001 छ.ग.
मो.– 9575665624

प्राचीन युग–धनिक के गुरूकुल में नए सत्र की प्रवेश परीक्षा।

धनिक का पुत्र असफल। ध ानिक ने सविनय कहा–योग्य विद्यार्थी को प्रवेश देवें। मेरा पुत्र पुनः प्रयास करेगा।

वर्तमान युग–धनिक के गुरूकुल में नए सत्र की प्रवेश परीक्षा।

धनिक का पुत्र असफल।

धनिक ने डांटकर कहा–जो सवार्धिक डोनेशन दे, उसे प्रवेश दिया जावे। मेरा पुत्र ऊंची डिगरी खरीद लेगा।

केंचुए की बात

एक भूखा किसान पूरा दिन बंजर जमीन खोदता रहा । ढेले पत्थर टूटते रहे। सांप बिच्छु घबरा गए।

कई दिनों से घबराया केंचुआ पूछ ही बैठा–''जमीन कब तक खोदोगे ???''

''जब तक यह भुरभुरी नहीं हो जाती!''

जवाब सुनकर केंचुआ घबरा गया। अगली रात सारी जमीन भुरभुरी हो गई।

काव्य

चाह

बहुत ऊँचे, बहुत ही ऊँचे
उड़ जाते थे हम ।
यथार्थ की धरा से
कल्पना के बादलों तक,
सपनों के महल बनाते,
जीवन का आरम्भ ऐसा ही होता है ।

फिर भूख की गर्मी
और रोटी की ठण्डक को
पहचाना हमने,
तो ढूंढने लगे वही पुरानी दुनिया,
जहाँ अधूरे सपनों या
असफल क्रान्ति का नाम
कोई नहीं लेता,
रेल के डिब्बों–सा
खिंचा चला जाता है आदमी,
आदमियों के बीच
खो जाता है आदमी ।
फिर भी कहीं जगह न मिली
कि सपनों के महल भूल सकें,
मन का मकान बना सकें ।
अब क्या चाहिए ?
बस इक कुटिया,
जहाँ जलता रहे
दीया इस विश्वास का
कि हम जी रहे हैं
अपने मन से, अपने ढंग से ।

सपने बचे हैं......

मरना चाहा कई बार,
मर न सका,
एक लक्ष्य चूका, तो लगा –
सब कुछ चूक गया,
इस जीवन का कोई सार नहीं ।
मरने का बहाना
चाहे कुछ भी रहा हो,
जीने की प्रेरणा बलवती रही सदा,
कुछ सपने बचे हैं जीने के लिए ।

हाँ,
मर जाने की इच्छा
चक्रवात्–सी उमड़ी,
बाढ़–सी चढ़ी,
पर मिटा न सकी
मेरे सुन्दर सपनों को ।

मैं उर्वर–नम मिट्टी हूँ ।

तुम मेरे जीवनांगन में
उगे रहो कैक्टस की तरह
और तुम्हें सींचता रहूँ मैं
माली की तरह,
ऐसा सौन्दर्य–बोध मुझमें नहीं ।
मैं ऐसा कलाकार भी नहीं,
कि अपने घाव दिखाकर
यश या धन पा सकूँ,
मिलन चाहते हो मुझसे
तो औषधि बनो मेरे घावों की,
तुम जान जाओगे
कि मैं उर्वर–नम मिट्टी हूँ ।

विक्रम सोनी
पुराना नरेन्द्र टाकीज रोड,
जगदलपुर–494001
जिला–बस्तर
मो.–9407774839

ऐसा क्यों होता है !

ऐसा क्यों होता है
कि महीने के अन्तिम दिनों में
कम होते जाते हैं –
चावल, आटा, तेल, शक्कर,
मेरी जेब के नोट,
तुम्हारी चूड़ियों की खनक,
मेरा धैर्य,
तुम्हारी मुस्कान
और
बढ़ती जाती हैं – आवश्यकताएँ ।

लघुकथा

सच्चाई

एक संत की सच्चाई के किस्से दूर–दूर तक फैले हुए थे। उसे धर्मराज कहते थे लोग। उसकी सच्चाई की बातें सुनकर दूसरे शहर के एक व्यक्ति ने सोचा–क्यों न इससे कुछ बातें पूछीं जाये। शायद देश की कुछ समस्याओं का कुछ समाधान मिल जाये। वह व्यक्ति संत के पास पहुंचा उसे प्रणाम करके आपने प्रश्न पूछे।

''ये बताइये संतश्री देश बड़ा या धर्म ?''

''जब भारत पाकिस्तान का मैच हो या युद्ध, तब देश बड़ा होता है। बाकी समय धर्म।''

''संतश्री क्या धर्म नफरत फैलाता है ?''

''ये तो इस बात पर निर्भर करता है कि धर्म की पतंग कौन उड़ा रहा है।''

''राम बड़े या रहीम ?''

''जिनके मानने वालों की संख्या ज्यादा है वही बड़े।''

''बड़ा कौन है ?''

देवेन्द्र कुमार मिश्रा
पाटनी कालोनी, भरत नगर, चंदनगांव
छिन्दवाड़ा–480001
मो. 9425405022

बेरियर

डॉ.जे.आर. सोनी
डी.95 गुरू घासीदास कॉलोनी
न्यू राजेन्द्र नगर
रायपुर(छ.ग.)
मो.–

सरदार करतार सिंह ट्रक लेकर हैदराबाद के लिए रवाना हुआ। जगदलपुर के दरभा घाटी में बहुत मुश्किल से ट्रक चढ़ पाई। घाटी पार होने करतार सिंह ने हेल्पर जालम सिंह से कहा, ''उस्ताद! सामने घर से देशी की दो बोतल ले कर आओ। मैं थोड़ा पैर सीधा करता हूं।'' जालम सिंह दौड़कर दो बोतल देशी ले आया। करतार सिंह एक बोतल वहीं पी गया ।

पीने के बाद ट्रक सही दिशा में चल पड़ी। जहां जहां बेरियर मिला वहां हेल्पर जाकर एन्ट्रीफीस देकर आ गया। ट्रक रफ्तार तेज हो गया, सुकमा, दोरनापाल, शाम को कोण्टा बेरियर पहुंच गया। हेल्पर जालम सिंह बेरियर फीस तीन सौ रुपये देने गया। तीन सौ रुपये सहा. परिवहन अधिकारी ने ले लिया और शराब के नशे में चूर होकर हेल्पर को तीन थप्पड़ जड़ दिया। हेल्पर मार खाकर ट्रक के पास आ गया।

अधिकारी सभी जाने वालों को मार–मार कर भगा देता था। बेरियर नहीं खोलने देता था। बेरियर के दोनों ओर हजारों ट्रकों की लाईन लग गई। घंटों जाम लग गया। सभी ट्रक चालक उससे परेशान हो गये। करतार सिंह परेशान होकर ट्रक से नीचे उतर गया। हेल्पर ने कारण बताया। करतार सिंह ने बोला ''चलो मेरे को पकड़कर ले चलो।'' मुश्किल से गिरते पड़ते करतार सिंह बेरियर के पास पहुंच गया और कहा ''बेरियर क्यों नहीं खोल रहे हो साहब ?''

अधिकारी ने नशे में चूर होकर मां बहन की गाली दे दी। करतार सिंह आगबबूला हो गया। अधिकारी का कॉलर पकड़कर चार चप्पल जड़ दिया। मार खाने के बाद अधिकारी होश में आ गया और बेरियर खोल दिया। सभी ट्रक चालक राहत की सांस लिये। करतार सिंह को सभी ने धन्यवाद दिया और कहा ''शेर को सवा शेर मिल गया।''

उसके बाद करतार सिंह की ट्रक कभी भी बेरियर में नहीं रुकी, न ही एन्ट्रीफीस की मांग की गई क्योकि जैसे को तैसा मिल गया था।

किस्मत का पिज्जा

बालकृष्ण गुप्ता 'गुरू'
डॉ. बख्शी मार्ग,
खैरागढ़ (छ.ग.)
मो.–9424111454

गार्डन में प्रतीक ने सुभाष की ओर पिज्जा सरकाते हुए कहा–''इसे पिज्जा कहते हैं, तुम्हारे लिए लाया हूं। खाकर देखो, अच्छा लगेगा।''

''तुम्हें अच्छा लगता होगा, अक्सर खाते होगे! आज भी खा लो।'' कहते हुए सुभाष ने पिज्जा प्रतीक की ओर सरका दिया।

''इसलिए तो तुम्हें कह रहा हूं। मुझे अच्छा लगे, और दोस्त को न खिलाऊँ ?''

पिज्जा प्रतीक ने सुभाष के एकदम पास खिसका दिया।

''रिक्शावाले का बेटा बड़े आदमियों के पिज्जा का स्वाद जानकर क्या करेगा ? उसे खाना तो रूखी–सूखी रोटी ही है।''

''तुम ज्यादा क्यों सोचते हो। अच्छा लगे तो मैं तुम्हें अक्सर पिज्जा खिलाया करूंगा।''

''तुम दोस्त हो, इसलिए ऐसा कह रहे हो। मगर मैं तुम्हें अपने लिए ज्यादा खर्च क्यों करवाऊँ ?'' ऐसा कहते हुए सुभाष ने पिज्जा की तरफ आंखें बंद कर बैठ गया।

प्रतीक भी आंख बंद करते हुए कहा–''लो मैं आंख बंद कर लेता हूं। तुम आंख खोलकर पिज्जा खा लो।''

तभी एक कौव्वा झपट्टा मारा और पिज्जा ले उड़ा।

सुभाष सोचने लगा–''प्रतीक प्यार से खिला रहा था, खा ही लेना था।''

प्रतीक सोच रहा था–''सुभाष की सोच सही है, मुझे खा लेना था।''

हाइकू

प्रातः है जन्म
नव किरणों संग
लिए उल्लास

बचपन की
अठखेलियों संग
हुए जवान

आई ढलती
दुपहरी की धूप
ढले जीवन

दिवस बीता
अनुभव संजोए
बांटते ज्ञान

हुई है शाम
है दिवसावसान
जीवन अंत

पूर्णिमा सरोज
मेटगुड़ा, जगदलपुर
जिला–बस्तर
पिन–494001
मो–9424283735

समय

समय
कब रहा तुम्हारे पास,
जो अब नहीं...?

विरासत में
सम्पत्ति की तरह
नहीं मिला समय,
जो
बेरहम फ़िज़ूलखर्ची से
हो जाये ख़लास।

परिश्रम से अर्जित धन भी नहीं,
जो पूरा नहीं पड़ता
एक छोटे–से परिवार के
ठीक–ठाक भरण–पोषण के लिए।

ग्रह–नक्षत्रों की चाल देख
तुम्हारे लिए
बदलने वाला भी नहीं समय।
वह तो अपनी गति से
चलता है निरन्तर
और
हवा के झोंके की तरह
तुम्हें छूकर गुज़र जाता है।
संचय कैसे करोगे
समय का...?

पकड़ सको तो पकड़ो
उसकी छाया को
कर लो अंकित
अपनी कविता में।

समय
आता नहीं कभी लौटकर,
मत करो उसकी प्रतीक्षा।

रहो सजग
कि आने वाले क्षण को
गुज़रने से पहले
कर सको महसूस
अपनी इन्द्रियों से,
जी सको उसे भरपूर,
और बना सको
अपने जीवन का
अमिट अनुभव ।

वरना, समय
कब था तुम्हारा,
जो अब नहीं है ।

लक्ष्मी नारायण पयोधि
एफ–83/54, तुलसी
नगर, भोपाल–462003
(म.प्र.)
मो–09424417387

लघुकथा

खुशियों की खातिर

बिटिया को मिली छात्रवृत्ति गणवेश व साइकिल की राशि से वे अपने लाडले की फीस जमाकर उसे अच्छी पढ़ाई करने व बेटी के घर पर रहकर मां के काम–काज में हाथ बंटाने की हिदायत देने लगे।

बेटी...अपने भाई की खुशियों को ही अपनी खुशियां समझ उसकी खुशियों में शामिल हो गई।

और वे....दोनों को खुश देख, अपनी पीठ थपथपाने लगे।

अशोक 'आनन'
मक्सी–465106
जिला–शाजापुर (म.प्र.)
मो–9981240575

एक किरण

समझ से परे थी उसकी भाषा
कुछ–कुछ सिद्ध मंत्रों जैसी।

चालाकी के वशीकरण से युक्त
मोहनी थीं उसकी मुद्राएँ,
संवाद की सामर्थ्य से विहीन
मौन मैं
हमेशा की तरह स्तब्ध।

उसकी आज्ञा में अनुरोध का भास,
इंकार की नहीं कोई गुंजाइश।
यंत्रचलित–सा मैं
और नियंत्रण उसके हाथ में।

मेरे मन की उथल–पुथल से
अनजान बना वह
मुझ पर लादता रहा
अपनी दुर्जेय इच्छाएँ
और मैं
रेगिस्तान में ऊँट की तरह
सिर उठाये आकाश की ओर
निहारता शून्य में
चलता रहा अनवरत
संकेत की दिशा में
शताब्दियों से।

पीढ़ियों से लदा बोझ
न पीठ से उतरा,
न मन से ही।

उठने लगे रेत के बवण्डर,
छाने लगे दिशाओं में फिर
अंधकार के बादल।

मन में फूटने लगी अब
उम्मीद के उजाले की
एक किरण,
अवसर अनुकूल,
झटक दूँ अवांछित बोझ
पीठ से
और मन से भी।

अभिलाषा

यह कविता नहीं कटाक्ष है उस पर
तानाशाह के प्रत्यक्ष रूप पर
देखना भयभीत हो उठेगा वो
जिस पर यह प्रत्यक्ष वार है
समय की ललकार है
विचारों का प्रहार है
मर्यादा से बाहर उस
वीभत्स रूप का संहार है।
यही कायदा है
स्वयं को सबल बनाने का
स्वाभिमान को जगाने का
अंतरमन टूटा है
फिर यहीं से अंकुर फूटा है
अब ये वृक्ष बना है।
ममता, त्याग और समर्पण
से सना है।
इसका कोई विरोध नहीं
बस
बस
अब कोई अवरोध नहीं
अब बारी है सम्मान की
खुद की पहचान की
आत्मा की आवाज की
जो चिंगारी उठी है
श्रृंगार रस तक जायेगी
कविता की हर पंक्ति को
सुंदर अलंकारों से सजायेगी
गुलामी की जंजीरों को
तोड़ने की नई परिभाषा है
अंत हृदय के स्पंदन में
अब जीने की अभिलाषा है।

श्रीमती सुषमा यादव
मोतीलाल नेहरू वार्ड मोती
भवन गली नं.–2
नयापारा
जगदलपुर–494001
मो–7089304024

पेड़ और मैं

मेरे उगाये पेड़ों पर
उकेरे नहीं हैं मैंने अपने नाम
यह जमीन भी मेरी नहीं है
हाँ, इन पेड़ों में बह रही है–
मेरे पसीने की कुछ बूंदें,
पेड़ पहचानते हैं मुझे
देखते ही पुलक कर झर उठते हैं।
पेड़ नहीं सुनना चाहते
दुनियादारी के उलझे किस्से,
क्योंकि जब पेड़ सुनायेगा
लोग बहरे हो जायेंगे,
पेड़ बस पेड़ है
हरियाते हुए
जाने कब से कब तक।
पेड़ों से विदा लेते वक्त
रोते हुए पेड़ों ने मुझसे कहा था–
मुझ पर लिखी तुम्हारी वो
कविता तो सुना दो,
पेड़ गीता सुनने लगे और
मैं श्वेत वस्त्रों में लुढ़क पड़ा था
लोग जरूर कहते होंगे–
होनी को कौन टाल सकता है।

रमेश कुमार सोनी
जे.पी. रोड
बसना–493554 छ.ग.
मो–9424220209

सुकून

दीवारें खड़ी हैं कहीं–
रोते–बिसूरते,
हँसते, गर्वोन्नत मस्तक से
तो कहीं तख्ती लगाये
दीवारों ने कहा–
घर बनाने उठते हुए सुकून मिलता है
घर बाँटने के लिए उठते दुख होता है
सीमा बनाते हुए रोना आता है।
भूखी, नंगी, प्यासी, धूप सहती दीवारें
संवार दी जाती हैं
सत्ता के उत्सव मनाने।
दीवारें दुल्हन सी खामोश हैं
देखती, सुनती, सहती हुई गूंगी
दीवारें कंधा देती हैं
आँसुओं और सिसकियों को
लोग जिस नजर से देखें
वैसी दिखती हैं दीवारें
कभी सूनी तो कभी बोलती।
दीवारें पहचान है गाँवों में
पीली दीवार वाला घर......
नीली दीवार वाला घर.....और
हरे रंग वाला घर फलाने का है
शहरी दीवारें तख्तियां लिए खड़ी होती हैं
मिस्टर या मिस......
जैसे इनका नामकरण किया गया हो,
वैसे हम हैं तो
दीवारें हैं
दीवारों से हम नहीं
इसलिए
गिरा देनी चाहिए
तख्तियों वाली दीवारें
गूंगी, बहरी, अंधी दीवारें।
दीवारें, घर बनाती हैं
घर, गाँव बनाते हैं
गाँव, शहर बनाते हैं–
आदमी के रहने के लिए,
लेकिन आदमी
सुकून पाने बाहर भटकता क्यों है ?

प्रदेश का प्रवासी लाल : सरदार सुखदेव सिंह लाल

लोकबाबू
311, लक्ष्मी नगर,
रिसाली
भिलाई नगर
छ.ग. 490006
मो. 09977030637

1983 में जब मैं राजहरा से स्थानांतरित होकर भिलाई आया और यहां के साहित्यकारों से अपना मेलजोल बढ़ाकर उनकी बिरादरी में शामिल होने की चेष्टा कर रहा था, तो बहुत से नाम–अनाम लोगों से मिलना हुआ। ज्यादातर कविता में ही अपना हाथ आजमा रहे थे। साहित्य पर वैचारिक गोष्ठियाँ शून्य थी। मैंने अपने जैसे कुछ मित्रों से मिलकर सांगठनिक रूप से लोगों को जोड़ना शुरू किया, ताकि साहित्य पर और साहित्य से इतर विषयों पर भी मिल बैठें और विचार करें। बहुत से अच्छे लोग मिले। उन अच्छे लोगों में जो और भी ज्यादा अच्छे थे, उनमें एक नाम सरदार सुखदेव सिंह लाल का रहा। हम मित्रों से सबसे वरिष्ठतम, किंतु सेवाभाव से गोया सबसे कनिष्ठ हों। स्वभाव से हँस मुख और मिलनसार।

सेक्टर–6 भिलाई में उनकी फर्नीचर की दुकान थी। रहते वे दुर्ग में थे। दस किलोमीटर दूर। रोज सुबह नौ–दस बजे अपनी दुकान में आ पहुँचते और देर शाम–रात तक दुकान में लकड़ियों पर रंदा चलाते, खीले मारते, पॉलिश करते, सनमाइका चिपकाते दिखायी दे जाते। शाम तब दुकान में उनका सहायक या नौकर भी नहीं होता था। चूंकि शहर के मध्य में उनकी दुकान थी, सो मैं और कुछ दूसरे युवा मित्र उनकी दुकान में आकर बैठ जाया करते। अपनी–अपनी कवितायें भी सुनाते–सुनाते। लाल साहब दूसरों की रचनाओं पर दिल खोल कर दाद देते। इसी बीच पता चला कि वे स्वयं भी गजलें और कवितायें लिखते है। हमारे सुनाने का आग्रह वे अकसर वे टाल जाते या पास की चाय की दुकान में चाय भिजवाने के लिए कहने निकल जाते। मगर कब तक बचते। हम फिर उन्हें उनकी दुकान से बाहर अन्य साहित्येक–गोष्ठियों में भी ले जाने लगे।

लाल साहब की रूचि मुख्यतः ग़ज़लों में थी और बाद में पता चला कि हमारे अविभाजित प्रदेश के नामचीन शायर (स्वर्गीय) सलीम अहमद जख़्मी बालोदवी के पास अपनी ग़ज़लों को सुधरवाने, राय मांगने 75 किलोमीटर दूर बालोद अकेले चले जाया करते थे। यही कारण था कि उनकी रचनाओं में क्रमशः अधिक निखार आता गया।

आपका जन्म 1929 को पंजाब के नहुआ ग्राम में हुआ था, जो तहसील नवाशहर, जिला जालंधर में पड़ता है। आप पांचवे दर्जे तक ही पढ़ पाये थे कि पिताश्री तेलासिंह लाल के साथ बेहतर रोजी–रोटी की तलाश में छत्तीसगढ़ के मनेन्द्रगढ़ में चले आये। पिताजी लकड़ी के काम के उच्चकोटि के कारीगर थे उनकी यह कारीगरी ही इन्हें विरासत में मिली थी। जब आप थोड़े बड़े हुए तो खैरागढ़ में आपने स्वयं की फर्नीचर की दुकान खोल ली। खैरागढ़ अपने संगीत कला विश्वविद्यालय के लिए प्रसिद्ध था। संगीत के प्रति आकर्षण ने ही उन्हें खैरागढ़ लाया था। अतः उन्हें विश्वविद्यालय में प्रवेश ले लिया और फिर क्लासिकल वोकल म्युजिक में विशारद की डिग्री ले ली।

आपके छोटे भाई श्री हरभजन सिंह लाल, जो आपसे दस साल छोटे थे, और जिनको आपने कभी स्वयं पालक के रूप में स्कूल में दाखिला करवाया था, अब बड़े हो गये थे और दुर्ग बुलवा लिया।

खैरागढ़ के मुकाबले दुर्ग बड़ा शहर था और भिलाई इस्पात संयंत्र के लग जाने से और बड़ा हो गया था। आपने 1965 में भिलाई (दुर्ग) में अपने फर्नीचर की दुकान खोल ली।

समय बीतता और बदलता गया। आपके पांच बेटे और एक बेटी हुई। बेटी तो दिल्ली में ब्याही और सभी बेटे एक–एक कर टोरंटो (कनाडा) में जा बसे। 1990 में बड़े बेटे सरजीत सिंह ने इन्हें भी अपने पास कनाडा बुलवा लिया। मुझे याद है जब आप कनाडा शिफ्ट हो रहे थे तो अपनी दुकान का बाकी तैयार माल औने–पौने में बेच डाला था। आखिर में एक दीवान रह गया जिसे उनके आग्रह पर मैंने एक हजार रूपये में रख लिया था, जो अब भी उनकी याद दिलवाता रहता है।

अब तो लाल साहब प्रवासी नागरिक हो गये। साल में एकाध–बार भारत आ जाते हैं। छोटे भाई का परिवार और दुर्ग–भिलाई की दूसरी स्मृतियाँ उन्हें यहां खींच लाती है। दुर्ग के दीपक नगर में आपका आवास अब भी है जो आपके आने पर रोशन होता है। हालांकि मकान का एक हिस्सा आपने पोस्ट–आफिस हेतु किराये पर दे रखा है।

टोरेंटों (कनाड़ा) में रहकर आपका लेखन रूका नहीं, बल्कि निरंतरता मिल जाने से उसमें और निखार व प्रभाव पैदा हो गया। वहां की सभी प्रमुख पत्रिकाओं में उनकी रचनाओं को साभार छापा है। विदेश की जरूरत ने उन्हें अंग्रेजी भाषा का भी ज्ञाता बना दिया। उन्होंने पांच वर्ष अंग्रेजी भाषा का अध्ययन किया है। आज आप हिन्दी, उर्दू, पंजाबी और अंग्रेजी, चार भाषाओं के जानकार हैं हम चाहते थे प्रदेश के नये पाठक और सहित्य–रसिक उनसे और उनकी रचनाओं से अवगत हों। इसलिए यहाँ उनकी 'ओस' कविता और ग़ज़लें दी जा रही है।

ग़ज़ल

तुम्हारी याद में हम दिन गुजार लेते हैं।
तस्सुवर आपका दिल में उतार लेते हैं।

हुआ ये हाल अब दीवानगी का मेरी,
जुनूने इश्क का हम तो खुमार लेते हैं।

तुम्हारे दर पे जब आके बैठ जाते हैं
तुम्हारे रिंदो में हम कर शुमार लेते हैं।

ये कैसा जाम था तूने पिला दिया साकी
तुम्हारा नाम जो हम बार–बार लेते हैं।

उन्हीं की याद में ये लाल गुजर जाये तेरी
जिन्दगी जो भी बची उसको संवार लेते हैं।

ग़ज़ल

दिल मेरा नाशाद है लगता नहीं है।
अब तो ये बरबाद है लगता नहीं है।

खूब यारों ने की इसकी चारागरी
ये भी तो उस्ताद है लगता नहीं है।

इसकी धड़कन का भरोसा है नहीं
ये बड़ा बेदाद है लगता नहीं है।

अब न समझाने का इसपे है असर
ये मेरा अज़दाद है लगता नहीं है।

है तो ये हरजाई लाल क्या यकीं
ये बड़ा आजाद है लगता नहीं है।

ग़ज़ल

गिराके बिजलियां फूंक दिया आशियाने को।
अभी भी पूछते हो हाल क्या है इस दीवाने को।

हमेशा हम भी तेरी दाद देंगे गम गुसारी की
लगाई खुद ही तुमने आग आये खुद बुझाने को।

मुहब्बत में न मेरे यार मुझको इतना तड़फाओ
कोई भी रो पड़ेगा सुनके मेरे अफसाने को।

कभी तो जान जाओगे हकीकत इस दीवाने की
बहाके आंसुओं को तुम बताओगे जमाने को।

किसी की जिन्दगी से, लाल सुनो खेलने वालों
कभी तो पूछा होता, तुमने आके इस दीवाने को।

ओस

सुबह सबेरे ओस पड़ी थी
सुन्दरता थी एक अनोखी
किरण पड़ी थी जब सूरज की
चमकने लगी जैसे मोती
सूरज से ये डरती–डरती
छुप–छुप के ये मरती–मरती
कहां गई ये छमक छबीली
फूलों का मुंह धोती–धोती
उतर गगन से आई धरा पे
कुछ पत्तों ने थाम सी ली थी
चली हवा सर सर करती
टपकन लगी देख अलोपी
ये सुकुमारी बड़ी प्यारी
शीतलता की राजकुमारी
पड़ी–धूप तब नजर न आये
जादूगरनी देख आलोपी।
अतिथि निशा की भोर की रानी
बनकर बैठी देख पहूंनी
इसे न भाये लाल ग्रीष्म
ग्रीष्म ऋतु में गगन में रहती।

ग़ज़ल

अब सही जाये न हमसे ये जुदाई तेरी।
रो लिया चुपके से जब याद आये तेरी।

बह रहे हैं आंसू मेरे जैसे सावन की झड़ी
याद बनके ये घटा, आसमां पे छाई तेरी।

छूट गये पतवार मेरे, आके पास ही साहिल
हर लहर तूफान बनके जब टकराई तेरी।

दूरियां इतनी बढ़ी के जी तरस के रह गया,
जान लेना बन गई ये आशनाई तेरी।

रो पड़े थे लोग सुनके दास्तां ये मेरी
लिखके हमने जब ग़ज़ल गुनगुनाई तेरी।

तुम रहो शांदा हमेशा ये दुआयें मेरी
मांगता है लाल हरदम ये राई तेरी।

सरदार सुखदेव सिंह लाल
टोरेन्टो कनाडा

ग़ज़ल

उनका रूठना हमसे, कयामत की निशानी है
ये मरगे करम भी उनकी हमीं पे मेहरबानी है।

ये वाजिब है कहां इल्जात शमां, मासूम को देना
शमां पर जलना परवाने की आदत पुरानी है।

भरके फूल दामन में खड़े हैं, कब से वो दर पे
उन्हें मालूम है मय्यत इधर से होकर जानी है।

ख्याले यार जन्नत है खल्द की बात छोड़ो
उन्हीं की जिन्दगी है लाल उन्हीं से जिन्दगानी है।

विलुप्त हो रही धुरवी बोली : बस्तर की अमूल्य धरोहर

इन्द्रो नेताम
बस्तर विश्वविद्यालय
जगदलपुर–494001
जिला–बस्तर
मो–8963980848
मार्गदर्शक
डॉ. योगेन्द्र मोतीवाला
डॉ. राजेन्द्र सिंह
डॉ. सतीश जैन

प्रकृति के साथ मानव के पास अगर कोई अमूल्य धरोहर है तो उसका अपना स्वर है जिसे शब्दों के रूप में अभिव्यक्ति के लिए उपयोग किया जाता है। शब्द एवं शब्द समूह मानवीय संवदेना की प्रकट प्रवृत्ति है जिसके माध्यम से सार्थक अर्थ, संवाद, ज्ञान विस्तार एवं संपूर्ण मानवीय व्यवहार आधारित होता है, हम इसे भाषा बोली का नाम देते हैं। भाषा बोलियां व्यक्ति, वर्ग, समाज एवं देश का प्रतिनिबिधत्व करती हैं। संसार में 6–7 बोलियों की विविधता होते हुए भी मानव सभ्यता के विभिन्न वर्गों में एक जुटता है ''विश्वकुटुम्बकम'' भाषा, बोली के कारण ही संभव हो सका है। विश्व की असंख्य बोलियां जिन्हें जनभाषा, लोकभाषा या जनजातीय बोली के रूप में जाना पहचाना जाता है, इन बोलियों का प्रचलन मौषिक प्रभाव एवं आत्मीयता अनेक संस्कृतियों, परम्पराओं एवं जीवन का जिन्दा होना साबित करती है तो वहीं विभिन्न संस्कृतियों के बीच एकता स्थापित करने में विशिष्ट सहायता प्रदान करती है। भारत में प्राचीन काल से 500 बोलियों का प्रचलन माना जाता है। यूनेस्को के रिपोर्ट के अनुसार 196 भारतीय बोलियां खतरे से घिरी हैं या विलुप्त होने की कगार पर पाई गईं हैं। बोलियों के विलुप्तिकरण में देश के छत्तीसगढ़ राज्य की आदिमयुगीन विरासत बस्तर जिले की बोलियां भी अछूती नहीं रही हैं। सन् 1936 में जार्ज ग्रेयसन के अनुसार बस्तर में एक ऐसे व्यक्ति से मुलाकात हुई जो बोलियां जानता था। अभी एक सदी भी नहीं गुजरी है आज गोण्डी, हल्बी, भतरी, दोरली एवं धुरवी बोलियों का प्रचलन मिलता है। पूरे देश में बोलियों का तेजी से विलुप्त होना अर्थात् देश की ध ारोहर का ह्रास होना है जो प्रतयेक नागरिक के लिए चिंता का विषय है। बोलियों का संगम स्थल कहे जाने वाले बस्तर संभाग के बस्तर जिले का ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक महत्व विश्व पटल में विशिष्ट जनजातीय संस्कृति एवं आदिकालीन सभ्यता के रूप में जाना पहचाना जा चुका है। प्रत्येक वर्ष में वर्ष भर देश और विदेश के सैलानियों और शोध ाार्थियों का आवागमन देखा जा सकता है। विश्व की धरोहर में बस्तर लोक जीवन व बस्तर की भूमिका को अन्य देशों की तुलना में कमतर आंकना हमारी कमजोर मानसिकता को स्पष्ट करता है। बस्तर की प्रथम बोली गोण्डी देश के बड़े भूभाग में बोली जाने वाली बोली है। छत्तीसगढ़ के अलावा आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश में प्रचलित बोली है। बोलियों के वर्गीकरण में कई विद्वान गोण्डी की उपबोलियों में धुरवी एवं दोरली बोली को मानते हैं। भद्री राजू कृष्णामूर्ति के बताये वर्गीकरण से हम स्पष्टतः समझ सकते हैं कि धुरवी मध्य द्रविड़ियम वर्ग के परजी से है। इनके अनुसार यह बोली तिरिया, ओड़िसा, नेतानार, दरभा और कुकानार क्षेत्र में प्रचलित है।

इस प्रकार बस्तर की बोली धुरवी कोलामी पर जी के शाखा पर आती है। धुरवी बोली बस्तर के धुरवा जनजाति के द्वारा बोली जाने व्यवहारिक बोली है।

बस्तर के इतिहास में 'धुरवा' जो वतमान में 'धुर' के नाम से भी जाने जाते हैं, महत्वपूर्ण भूमिका में हैं। भूमकाल आंदोलन सन् 1910 के क्रांतिकारी गुण्डाधुर, डेबरीधुर आज किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं। धुरवा बोली बोलने वालों का निवास क्षेत्र भौगोलिक विषमताओं से भरे अंचल है। राष्ट्रीय मार्ग 30 में स्थित बस्तर ग्राम से दक्षिण, दक्षिण पश्चिम एवं पूर्वोत्तर के गांवों तक फैला हुआ है, जिसमें बस्तर जिले के दरभा, तोकापाल, जगदलपुर, किलेपाल, बास्तानार विकासखण्ड व सुकमा, दंतेवाड़ा जिले शामिल हैं। निश्चित भूभाग में पाये जाने वाली धुरवा जाति की जनसंख्या अभी तक स्वतंत्र पृथक रूप से सही आंकलित नहीं मिलती है। यूनेस्को रिपोर्ट के अनुसार धुरवा की जनसंख्या 80000 (अस्सी हजार) आंकी गई है। सन् 1981 की जनगणना में 75000 के लगभग माना गया है जिसमें गोण्ड जनजाति के साथ जनगणना की गई है। धुरवी बोली पर जगदलपुर के धुरवा परिवार एवं जगदलपुर मुख्यालय से लगभग 20 किलोमीटर तक की दूरी में हल्बी, भतरी, हिन्दी का प्रभाव स्थापित दिखाई देता है। बोली का व्यवहारिक एवं अधिक प्रचलन धुरवा जनसंख्या कम आंकड़े में पाया जाना अर्थात संकुचित स्वरूप हमें बस्तर की गदबी बोली का स्मरण दिलाता है जो आज विलुप्त हो गई है। बस्तर की बोलियों के विलुप्त होने में कई घटनाओं, एतिहासिक, अतिक्रमण हिंसा, प्रतिहिंसा, घुटन, शहरीकरण, विस्थापन व आधुनिकता आदि का प्रभाव हो सकता है किन्तु इस सत्य को भी नकारा नहीं जा सकता कि आज बस्तर का शिक्षा का स्तर पहले से एक कदम आगे है। आज जागरूकता का अभाव नहीं है और हमें चाहिए कि हम शिक्षा के विकास में बोलियों का उपयोग करके विलुप्त होने से सुरक्षित रखेंगे और समाज के विकास को प्रभावित भी नहीं होने देंगे।

पूर्व कलेक्टर अंकित आनंद के अनुसार–''स्थानीय बोली से बढ़ता है आत्म सम्मान और खुलता है विकास का रास्ता।''

निसंदेह सत्य है –स्कूल में दाखिला होने से पूर्व बच्चा वही ज्ञान रखता है जो उसके परिवेश में है वही बोली समझता है और स्पष्ट जवाब देता है जो उसके परिवेश में बोला जाता

है। अन्य नवीन भाषा को सीखने में उस बोली का सहारा लेता है उसके मस्तिक पटल पर वह बोली ही काम करती है और धीरे–धीरे अन्य भाषाओं को सीखता जाता है। इस दौरान बोली को बोलने में दक्ष हुआ बच्चा ही जानता है कि छः वर्ष की उम्र में नई भाषाओं का सामना करना कितना कठिन है या सरल ? मैंने भी अपने अध्यापन कार्य के दौरान धुरवा बच्चों में यह कश्मकश देखी है। 'निंदिल' अर्थात जमीन बच्चों ने मुझे इशारे एवं लिख कर सिखाया था। धुरवा जाति का शिक्षा का स्तर संतोषजनक नहीं है। आज की स्थिति में बोली की शिक्षा और भी निम्न स्तर में है। वर्तमान सुकमा जिले के एवं बस्तर संभाग के सबसे ऊंचाई पर स्थित ऐलेंगनार जहां धुरवा जाति की जनसंख्या अन्य जाति से अधिक है, जनसंख्या लगभग 800 है। 2016 की स्थिति में केवल दो युवकों का बारहवीं पास होना एवं एक भी बालिका का आठवीं तक अध्ययन न करना विचारणीय विषय है। भौगोलिक विषमताओं में (ऊंचे पर्वत, नदी नाले, कांगेर घाटी, घने वन, हिंसा) शासन–प्रशासन के लिए चुनौती भरा है किन्तु इनका जीवन एकदम सरल–सौम्य एवं संतुष्टि पूर्ण होता है। बोलचाल आत्मीयता से परिपूर्ण न शिकवा न शिकायत, मातृभाषा में अध्यापन प्राथमिक शिक्षा को मजबूती प्रदान करने में सहयोग प्रदान करता है। इस उद्देश्य से भी धुरवा बोली का संरक्षण अति आवश्यक है। प्राचीन द्रविड़य बोली होने के बावजूद बस्तर लोक साहित्य में धुरवी बोली का कोई लोक साहित्य नहीं है। धुरवी संस्कृति, परम्परा, नृत्य, गीत, वस्त्र, आभूषण अपने आप में विशिष्ट हैं, अनूठे हैं जो सिकुड़ते स्वर के कारण अधूरे–अधूरे से हैं। वो दिन दूर नहीं कि बोल–चाल में उपयोग न हो और एक द्रविड़यन बोली और जाति का अस्तित्व खत्म हो जाये। वार्तालाप के अभाव में लोक साहित्य भी स्वतः ही अधूरा रह जायेगा। अन्य बोलियों के आत्मसात से अपनी पहचान खोने में वक्त न लगेगा। धुरवी बोली के शब्द सम्पदा का संरक्षण लोक साहित्य रचना द्वारा ही संभव है इसलिए बस्तर की आदिवासी बोली धुरवी बोली के व्यवहारिक शब्दों का संग्रह करना आज की आवश्यकता है। व्यवहारिक शब्दों का विशाल भंडार, संवाद, गीत, कहानी, मुहावरे व पहेलियों के रूप में धुरवी बोली एवं धुरवा समाज में अवस्थित है। इनके संकलन एवं अध्ययन से शिक्षा जगत, साहित्य क्षेत्र प्रशासनिक कार्य क्षेत्र भाविक ज्ञान से वृद्धि एवं धुरवी बोली को पसंद करने वाले पाठक व समूह तथा शोधार्थियों को विशेष लाभ होगा।

रोटी

हुआ यूं कि दिन दूनी–रात चौगुनी तरक्की करते उसके वारे–न्यारे होने लगे। अब वह लालिया नहीं रहा, बल्कि सेठ लाल चंद हो गया। इश्क–मुश्क छुपाये नहीं छुपता की तर्ज पर पैसा भी तो कहां छुपा रहता है? वह तो सिर चढ़ कर बोलता है। सो, कई संस्थानों–संगठनों को जब लाखो रूपयों का चंदा सेठ जी ने दिया तो वे सरकार की आंखों में भी आ गये।

अल–सुबह जब वे सपनों में नोटों की गड्डियां गिन रहे थे, आयकर वालों ने उनके मकान–दुकान–गोदाम को सील कर दिया। एक तरफ खातों, कागजातों, दस्तावेजों की जांच हो रही थी और दूसरी ओर घर के एक–एक कमरे, तहखाने और अलमारियां भी तलाशी जाने लगीं थी।

इन्कमटैक्स इन्सपेक्टर शर्मा ने पिछवाड़े की ओर बंद कमरे की ओर इशारा किया तो सेठ बोले–''वहां क्या है जी.. पुरानी कोठड़ी है.....अम्मा रहती है वहां। अंदर से बंद कर लेती है....सो रही होगी अभी।''

शर्मा जी की जिद के आगे सेठ जी की एक नहीं चली। किवाड़ खटखटाया गया। कुछ देर बाद अम्मा ने उनींदे स्वर में पूछा–''क्या है बेटा.... सब ठीक तो है? थोड़ी देर पहले ही मेरी आंख लग गई थी...क्या करूं रात भर नींद नहीं आती, बुढ़ापा जो.. ।''

''ये शर्मा जी... सरकारी आदमी... तुम्हारे कमरे को देखना चाहते है अम्मा।''

सेठ जी ने कहा पर अम्मा दरवाजे में ही अड़ी रही–''ना..ना... बेटा...मेरे यहां क्या धरा है?''

''हमें अपनी ड्यूटी पूरी करनी है अम्मा जी आपको कोई तकलीफ नहीं देंगे..बस जरा अंदर से देख भर लेना है..मैं भी तो आपके बेटे जैसा हूं न अम्मा।'' शर्मा जी की स्नेहिल बातों ने अम्मा को जैसे आश्वस्त कर दिया–''आओ बेटा..आ जाओ... पर अकेले आना।''

कमरे में एक चारपाई और एक छोटी संदूक थी। शर्मा जी की नजरें संदूक पर आकर अटक गई–''इसमें क्या है अम्मा.. जरा खोल कर दिखाइये तो।''

''न..न...नहीं...इसे नहीं खोल सकती...इसमें कुछ नहीं है।'' अम्मा ने स्पष्ट मना कर दिया पर शर्मा जी का वहम कैसे दूर हो?

''अम्मा प्लीज..जब कह रही है कि इसमे कुछ नही है..तो फिर दिखा दीजिए ना खोलकर..? और फिर आपने मुझे बेटा कहा है.. बेटे को तो हक होता है ना, मां की हर जमा–पूंजी को देख लेने.. टटोल लेने.. सहेज लेने.. और पा भी लेने का..क्या मैं ठीक कह रहा हूं अम्मा।''

''हां बेटा बच्चे को ही हक होता है..सबकुछ पा लेने का..पर कहां होता है ऐसा हक मां–बाप को भी ? कहते हुए अम्मा ने संदूक का ताला खोला दिया।

शर्मा जी देखकर दंग रह गये, संदूक में बासी, पुरानी, सूखी कुछ रोटियां रखी थी.. और अम्मा कह रही थी ''बेटा..रविवार का दिन होता है..घर में खाना नहीं बनता..ये सब लोग होटल में..और मैं अपनी गुजर कर लेती हूं..पानी में भिगोकर.. ।''कहां सुन पाये थे शर्मा जी अम्मा के आगे के शब्द ?

ओम मल्होत्रा कुसुमाकर
आकाशवाणी, बीकानेर
(राजस्थान)–334001
मो0–08890535731
09602481996

काव्य

यादें

तेरे बदन की सरसराहट से तो जागा हूँ मै अभी अभी
वरना रातभर तूने सोने ना दिया मुझको

वह रात जो जागकर काटी थी हमने
उसकी सिलवटें बिस्तर पर अब भी बाकी हैं
जो मोगरे तेरे गजरे में गुंथे थे कभी
आज भी मेरे बदन को महकाते हैं जैसे।

खोले थे जो केशु उस रात तूने
उसका मखमली अहसास आज भी है मुझको
तेरी सांसों का मेरी सांसों के संग उठना गिरना
ग़ज़ल बनके कागज पे उतर आये जैसे।

हर एक करवट पे
जो चुडियाँ टूटी तेरी
उनकी भैरवी कमरे में
सुनाई देती हैं मुझको ।

एक रात में ही दे दी
कितनी यादें तूने
एक रात मेरे साथ
फिर बिताने आना ।

संदीप प्रल्हाद नागराले
पूना महाराष्ट्र
मो—9881931810

इंद्रावती एक आस्था

एक आस्था का नाम
इंद्रावती
जो आराध्य है
जो जीवनदायिनी है
जो गंगा है
बस्तरियों की
उसका भी अब
होने लगा है बंटवारा
उसे रोका जाने लगा
आखिर
यह घनौना खेल है किसका
साजिश कैसी ?
क्या
बस्तर की भोली जनता जानती है
इस
पानी की राजनीति को
वह तो सिर्फ इतना जानती है
कि हमारी आराध्य
अविरल
पतित पावनी गंगा है
जो कभी भी
सूख सकती नहीं
मरने देगी नहीं कभी
प्यासा
मगर पानी में राजनीति
नहीं चाहिए ऐसी नीति हमें
जो कर ना सके
गरीबों का हित।

सरगी वन

साल वृक्षों के गहन झुण्ड
दूर—दूर तक वनों का विस्तार
नीरवता करती
सांय—सांय
कहीं टकराता पवन
विचरण करते
खग मृग के वृंद
हरित कांति का दृश्य
विहंगम
कहीं करील के झुरमुट से
आवाजें आती
हूम—हूम
लता कहीं
लिपटे पेड़ों में
कहीं खिले जंगली सुमन
देते हैं ये
संदेश
प्रकृति का
राह दिखाते मानव को
प्रगति का
कलकल करती
बरसती नदियां
जंगल बीच गुजरती
लेकर
निर्मल जल
दृश्य सुहाना देख
मेरा मन
कविता करने को
होता मुखर।

शकुंतला तरार
संपादक—नारी का संबल
प्लॉट नं.—32 सेक्टर—2,
एकता नगर
गुढ़ियारी, रायपुर—492001
मो.—9425525681

लघुकथा

उंगली पसंद

"ये सागर, अभी हमारे जिले का सबसे बड़ा साहित्यकार है, सतत प्रयत्नशील, रचनाशील...."

"और छपनशील! लगातार छप भी तो रहा हैं। छपना ही तो आजकल साहित्य की टेस्टींग किट है। जो जितना छपा वही बड़ा साहित्यकार!" विजय जी ने घोलघाल कर सागर पर व्यंग्य कसा।

"माना कि आप बहुत अच्छे डॉक्टर हैं। बड़ी जानकारी है आपको। आप यदि दवा दे दें तो यमराज भी दुम दबाकर भाग जाए। पर प्रेक्टीस करते नहीं, मरीजों से नफरत करते हैं। अस्पताल की व्यवस्था पर सवाल उठाते हैं तो आपकी डिग्री का मायने क्या है ? आपकी प्रतिभा का उपयोग क्या ? या फिर हम सब जाने कैसे कि आप संजीवनी बूटी हैं और मैं आपकी दवा खाकर अमर हो जाऊंगा।" सागर ने धीमे स्वर में कहा।

गौतम जैन
गुरूदेव सेल्स कार्पोरेशन
अग्रसेन चौक, रायपुर
मो—9826492601

एक बार तू उतर कर देख

दण्डकारण्य, चक्रकोट, महाकांतर
जिसके हैं नाम अनेक
मैं इस भूमि पर रहता हूं
यहां एक बार तू उतर कर देख।

ऐ! उजले चांद
उजला तुझसे अम्बर है
तारों से घिरा चांद
तू बहुत ही सुन्दर है
कोई नहीं और तुझ सा
तू है जहां में बस एक
पर मैं जहां रहता हूं
यहां एक बार तू उतर कर देख।

खनिज सम्पदा का यहां
विपुल भण्डार है
वन और औषधियां भी तो
यहां अपार हैं
धब्बे मिट जायेंगे तेरे
लगा ले इन औषधियों का लेप
लेकिन उससे पहले
यहां एक बार तू उतर कर देख।

नल–छिन्दक–सोम–काकति के
यहां कई सरोवर हैं
कई स्मारक बने हैं
जो आज पुरातात्विक धरोहर हैं
गाथा इन वंशों की गा रहे
कई पुरावशेष, कई शिलालेख
आगे की गाथा सुननी हो तो
यहां एक बार तू उतर कर देख।

इंद्रवती–नारंगी
शंकनी–डंकनी और शबरी
उकसायेंगे तुझे
स्नान को बारी–बारी
अगर रहना है
सदैव गोल और सफेद
तो इन नदियों में
एक एक बार स्नान करके देख
यहां एक बार तू उतर कर देख।

चित्रकोट–तीरथगढ़ प्रपात
जरूर तुझे लुभायेगा
यहां के पुष्प–फल का सुगंध स्वाद
तू नहीं भूल पायेगा
ये दण्डकवन लगेगा तुझे
जरूर नंदन वन सा नेक
इस भूमि पर तू उतर कर देख।

गिद्धराज का गीदम
बाणसूर का बारसूर
दंतेवाड़ा हो या जगतुगुड़ा
माई स्नेह पाये भरपूर
अगर पाना है
माई दंतेश्वरी का स्नेह
तो माई चरणों में
इस भूमि पर तू उतर कर देख।

ऐ उजले चांद
मैं बस्तर भूमि पर रहता हूं
जितना कहा
एक बार और कहता हूं
अहंकार त्यागकर
तू इस जमीं से जुड़कर तो देख
यहां एक बार तू उतर कर तो देख
यहां एक बार तू उतर कर तो देख।

सुभाष चंद्र साहू
जगदलपुरिया
बिलाईगढ़ छ.ग.
मो–9407718524

दलपत प्रभात

पश्चिम से प्राची में प्रभात दिखा
दलपत से उन्मेष हो सविता

सप्तरंगीणी रश्मि से है
युक्त दिगदंतिता
जिससे सविशेष रमणीयता
पाती तरू, सर, स्वयं सविता

मद हो गये मधु–उषा में
मन्द पवन झोंक से
बता रहे तरू सिर नोक हिला
दलपत तीर खड़े अशोक से

दलपत मध्य थल में मंदिर
जहां शिव विराजे
ताल लहर से ताल मिला
चहचहा पखेरू भजन गाते बजाते

निरख कर दर्शक दृग
सर स्थल में स्थिर होती न तनिक

सप्तरंगीणी छटा, कहीं अरूणा लाली
जल ऊपर मादकता लिए पवन
ताल में लहर मतवाली
चहचहाहट पंछियों की सुरवाली
तो कहीं किसलय की हरियाली

छटा बिखरी यहां भिन्न–भिन्न
थकता रमणीय विशेषता गिन–गिन

सुन हृदय रीझ जाता
प्रकृति का निःशब्द 'सुभाष'
दृग स्वर्ग निखरता
निरख दलपत का अनुपम प्रभात।

दलपत सागर हमारे शहर जगदलपुर की शान है। एक समय था जब पूरा शहर अनेक तालाबों से घिरा हुआ था, धीरे–धीरे योजनाबद्ध तरीके से उन्हें पाट–पाटकर गरीबों को कब्जा करने दिया गया और फिर आज वहीं पाश कालोनियां बनती जा रहीं हैं। अभी कुछ दिनों पूर्व इसी तालाब को कब्जामुक्त करने की लड़ाई ग्रीन ट्रिब्यून भोपाल से जीत ली गई है। पर रिजल्ट वही ढाक के तीन पात।

कौन सा रंग

होली का रंग
हरा लाल पीला
और न जाने कितने रंग थे।
दूध, बेसन रगड़ते रहे
तब भी छूट नहीं रहा
मिलाया था तुमने
कौन सा रंग ?
यादों के पटल पर
रह रह कर उभर रहा है।
धोती हूं जितना
रंग की चमक बढ़ती जाती है।
अरे कुछ तो करो
इस प्यार के रंग को
कोई तो मिटाओ।
डर लग रहा है
प्यार के इस रंग से।
कब इसका रंग, लाल हो जाये।
यादों के पटल पर
एक नया रंग न बन जाये।
धोखा, और धोखा
कोई इस प्यार के रंग में
शहीद न हो जाये।
यादों की पटल पर रह रह कर
उभर रहा है।
डर की एक रेखा
बार बार उस रंग पर
उभर रही है।
प्यार के इस रंग को
बेदाग न करना।
न मिटे तो न मिटे रंग
पर इसे ऐसे ही रहने देना।
यादों के पटल पर
रह रह कर उभरने देना।
कौन सा रंग मिलाया था तुमने
प्यार का रंग ही था,
जो मिट नहीं रहा।

आँख मिचौली

कहाँ हो तुम ?
कैसी हो तुम ?
आ भी जाओ,
कहाँ हो जाती हो गुम ?
वाष्प तुम्हें बुला रही हूँ।

आओ कुछ छण साथ हो लें
तप तप कर बेचैन हूँ
अपनी ही टकराहट से
अपने को ही जला रही हूँ।

कहाँ गई वह छप्पर ?
सुखरु तुमने खपरे बनाना
क्यों बंद कर दिया ?
मैं कहाँ जाऊं ?
चारो तरफ सीमेंट के
जंगल ही जंगल
किसे अपना घर बनाऊं ?
छप्पर पर बैठा करती थी
खपरों के रंध्रो से
कमरों में झांका करती थी
दो छण का विश्राम
लिया करती थी।

लाल मटके के पानी की
ठंडकता को महसूस करती थी ।
काली मटकी के बासी को
झांका करती थी।
चुन्नु मुन्नु के साथ
छुपा छुपी खेला करती थी।

रंध्रों से जब कमरे में जाती तो
मुझे देख अपने हथेलियों से
छूना चाहते थे
बार बार मुझे पकड़ा करते थे।
मैं अठखेलियां करती और
वापस लौट आती थी।

खप्परों पर विश्राम कर
चुन्नु मुन्नु के संग खेल
मटकों को छूकर
बासी को झांक कर
मैं जब वापस लौटती
तो मेरी गरमी शांत हो जाती।

आज सुखरु खो गया
चुन्नु मुन्नु रहने चले गये
पक्के मकानों में।
सीमेंट की छत पर
सर फोड़ती हूँ
बार बार टकरा कर
अपने आप को कोसती हूँ।

तप तप कर जल रही हूँ।
आओ वाष्प एक बार
मेरे साथ खेल लो
इस आँख मिचौली में
तुम ही रहती हो मेरे साथ
वाष्प की बूंद इठलाती बोली
नहीं धूप तुम और तपो
जितनी सह सकती हो सहो
फिर आती हूँ मैं
खूब खेलेंगे आँख मिचौली
छुपा छुपी
देखना एक दिन तुम्हें मैं
आकाश में बंद कर दूंगी
फिर मैं ही रहूंगी।
आज तुम हो, कल मैं
यही आँख मिचौली खेलेंगे
आँख मिचौली।

सुधा वर्मा
संपादक मडई
रायपुर–492001
मो–9406351566

लघुकथा

मैं इसलिए नहीं आया हूँ

डॉ. प्रकाश मूर्ती
यूनानी डॉक्टर,
नयापारा जगदलपुर
जिला–बस्तर
पिन–494001
मो–9425345539

एक सज्जन मेरे चैम्बर में दाखिल हुए और पूछा ''आप ही हैं डॉ. मूर्ती ?'' मैंने सहमति से अपना सर हिलाया। उन्होंने अपना परिचय देते हुए सामने रखी कुर्सी में अपना स्थान ग्रहण कर लिया फिर कहना शुरू किया "डॉ साहब कल एक मेडिकल शॉप में गया था वहां पता चला की आप अच्छे आदमी हैं इसलिए आपसे मिलने चला आया।"

मैंने कहा ''जी कहिये मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?'' उन्होंने कहा "मुझे जबड़ों का कैंसर था गठान थी ऑपरेशन करके निकाल दी गयी बोलने और खाने में थोड़ी समस्या होती है लेकिन उसके लिए मैं आपके पास नहीं आया हूँ!'' मैंने पूछा ''तो फिर किस लिए आये हैं?'' उन्होंने कहा "वो क्या है न डॉ साहब! मुझे कई सालों से एसिडिटी की समस्या रहती है लंबे समय से एसिडिटी की गोली रोज़ सुबह खाली पेट खा रहा हूँ। जिस दिन भी गोली नहीं खाता हूँ मुझे बहुत परेशानी हो जाती है लेकिन मैं इसके लिए भी आपसे पास नहीं आया हूँ!'' मैंने पूछा ''तो फिर किस लिए आये हैं ?'' उन्होंने कहा ''वो क्या है न डॉ. साहब मुझे हमेशा ज़ुखाम सा रहता है हर वक़्त सर में भारीपन की शिकायत रहती है कई डॉक्टर को दिखाया सबका कहना है की आपको साइनोसाइटिस की समस्या है ऑपरेशन करवाना पड़ेगा। मैंने ऑपरेशन करवा लिया। अभी थोड़ा बहुत ठीक है लेकिन मैं इसके लिए भी आपसे पास नहीं आया हूँ!''

मैंने पूछा ''तो फिर किस लिए आये हैं?'' उन्होंने कहा ''मेरे मुंह में छाला हो गया है। जिसकी अंग्रेजी दवाई मैं लगा रहा हूँ। दवाई लगाने की वजह से मुंह पूरा सुन्न हो जाता है कुछ भी खाता हूँ तो स्वाद का बिलकुल भी पता नहीं चलता है अब ऐसी भी जिंदगी किस काम की। डॉ. साहब! आदमी कमाता किसलिए है खाने के लिए और अगर खाने का ही स्वाद पता नहीं चले तो जीने का क्या फायदा लेकिन मैं....'' मैंने बीच में ही उन्हें रोकते हुए कहा ''आप उसके लिए भी मेरे पास नहीं आये हैं।'' उन्होंने सहमति से अपना सर हिलाया और पूछा ''आपको कैसे पता ?'' मैंने बड़ी विनम्रता से कहा ''बस ऐसे ही अंदाज़ा लगाया लेकिन ये बताईये की मेरे पास आप आये किस लिए आये हैं ?'' उन्होंने मुस्कुराते हुए अपने साथ लाये बेग से एक रसीद बुक निकाली और मेरी तरफ आगे बढ़ाते हुए कहा ''आपसे अपनी संस्था के लिए चंदा लेने आया हूँ। डॉ. साहब पांचेक हजार रूपये दे देते तो आपका हमारी संस्था पर उपकार हो जाता!!''

मौन वार्तालाप

गौरिया को दाना डालने के लिए अनाज के बर्तन में हाथ डाला तो केवल मुट्ठी भर ही अनाज हाथ में आया, नहाने के बाद पूजा से पहले गौरिया को दाना डालना उसका रोज का काम था ! आज दुविधा थी गौरिया को दाना डाले या मुट्ठी भर अनाज से अपने भूखे बच्चों का पेट भरे!

बच्चों का ख्याल आते ही अनाज से भरी मुट्ठी की पकड़ ढीली होने लगी अनाज उसमें से दाने दाने बर्तन पर गिरने लगे। तभी उसके कानों में गौरिया की चीं चीं कर चिंचियाने की आवाज़ सुनाई पड़ी। रोज की तरह गौरिया टीन छत की पर अपने बच्चों के साथ आ चुकी थी! उसकी हाथों की मुट्ठी भिंच गयी। न जाने कौन सा विचार मन में कौंधा फिर से बर्तन में बिखरे अनाज के दानों को अपनी मुट्ठी से समेटा और बाहर आकर टीन की छत की तरफ उछाल दिया। अनाज के दाने हवा में उड़ते छत पर फ़ैल गए कुछ नीचे आंगन में गिर गए! वो घर के अंदर आ गयी, दाना चुगने के लिए चिड़ियों की चोंच के टीन से टकराने की आवाज़ उसके कानों को ये आश्वासन दे रही थी कि गौरैया चावल के बिखरे दानों को चुगने छत पर अन्य चिड़ियों के साथ बैठ गयी हैं!

उसका अंतर्मन इस बात से परेशान था की उसके भूखे बच्चे जब खाना मांगेंगे तो वो उन्हें क्या जवाब देगी। उम्र की इस अवस्था में भी लोगों के घर बर्तन मांज कर बच्चों को जैसे तैसे बड़ा किया, स्कूल कालेज पास कराया लेकिन भूख तो किसी की सगी नहीं होती! तभी बाहर से माँ–माँ पुकारने की आवाज़ उसके कानों में पड़ी, वो घबरा गयी न जाने क्या हुआ ? बड़ा बेटा कहीं से अख़बार लेकर दौड़ता हुआ घर में दाखिल हुआ और खुशी से अपनी मां को गले लगाता हुआ बोला ''माँ अब तुझे किसी के घर बर्तन मांजने और कपड़े धोने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। मेरा लोक सेवा आयोग का रिजल्ट आ गया है। मैं अव्वल दर्ज़े से पास होकर बड़े सरकारी अधिकारी के रूप में चयनित हो गया हूँ!''

बड़ा सरकारी अधिकारी क्या होता है माँ को नहीं पता वो बस इसलिए खुश थी क्योंकि उसका बेटा खुश था! माँ –बेटे दोनों के आँखों में खुशी के आंसू थे। फटी साड़ी के अंचल से अपने बच्चे की आंखों का आंसू पोंछते हुए मां पीछे आंगन में गयी।

छत पर बैठी गौरिया उसे निहार रही थी। दोनों माँओं के बीच कोई मौन वार्तालाप हुआ हो जैसे गौरिया कह रही हो बस तुम ही मेरी चिंता कर सकती हो। मेरा तुम्हारे परिवार के प्रति कुछ भी दायित्व नहीं......''

बेच आया

पलकों के "ओजोन परत" के भीतर
न जाने कितनी बिजलियाँ छिपा रखी हैं ।
कितनी बारिशें रोने को बेताब हैं,
गीले से ख्वाब
संगमरमर बनकर सूख गए,
दिल ताजमहल मुमताज
दबाए बैठा है ।।
टिकट एहसासों की
अब बिकती कहाँ हैं ?
इसलिए मैं अपने सारे जज़्बात
बेच आया....!!

हर एक मंजर ने दिल फरेबी के
मुख़्तलिफ साये सताते रहे,
वो टूटी चारपाई का पुराना तकिया
सख्त है आज भी,
कमबख़्त किसी के दिल में
सर रख के जो सोया करता था।
मोहब्बत की गुस्ताखी में मारे गए
जिन्दगी भर रूह चुभती रही,
"मतलब" की बारूदी सुरंगो में
रिश्तों के पाँव टिकते कहाँ हैं ?
इसलिए मैं अपनी ख़्वाहिशों के जूते
बेच आया....!!

यूँ तो कई बार सांसों ने
"लिव एपलिकेशन" दी,
लंबी छुट्टी पर जाना किसे पसंद नहीं ?
मगर मैं उम्रभर उनसे
मजदूरी कराता रहा ।।
तब तक...जब तक मौत के "आबकारी अफसर" ने
"जरूरत" के "ऑफिस" में ताले
नहीं लगा दिए,
उस सूने मकान का तगादा आज भी माँगने वालों सुनो,
जिस्म को कुरेदा तो बस मिट्टी ही मिली
मगर अब मिट्टी भी मिट्टी जैसी
दिखती कहाँ है ?
इसलिए मैं अपनी रूह
बेच आया....!!

ये इण्डिया है,
खरीददार का नाम बताऊंगा तो दंगे हो जाएंगे !!

कृष कर्तव्य रामटेके
संपादक बस्तर ड्रीम्स
पोस्टऑफीस कालोनी
जगदलपुर–494001
जिला–बस्तर
मो–8889712459

चुनाव से पहले

महेश राजा
वसंत–51, कॉलेज रोड
महासमुंद छ.ग.
493445
मो. 94252501544

जंगल में चुनाव होने वाले थे। पिछले कई सालों से शेर ही जंगल का राजा चुना जाता था। सभी जानवर शेर के डर से उसे ही वोट देते थे। लगभग अधिकांश चुनावों में कोई भी उम्मीदवार शेर के खिलाफ खड़े होने का साहस नहीं कर पाता था।

पिछली बार एक लकड़बग्घा चुनाव क्षेत्र में कूद पड़ा। सभी जानवरों को भड़काने लगा। जंगल में आमसभा होने लगी और लकड़बग्घा जंगल की संस्कृति को बचाने के लिए भड़काऊ भाषण देते हुए शेर का चरित्र हनन करने लगा।

सियार, शेर का मुंह लगा था। उसने शेर से कहा–''दादा! इस लकड़बग्घे का कोई इलाज करना पड़ेगा। कल यह बकरियों को आरक्षण देने का मुद्दा लेकर उनसे कह रहा था कि यदि वह चुनाव जीत गया तो तैंतीस परसेंट बकरियों को जंगल के प्रशासन में भागीदारी देगा...अब आप ही बताओ, दादा! अगर जंगल की कुर्सियों पर बकरियां बैठ गई तो हम तो भूखे ही मर जायेंगे।''

शेर ने कहा–''रे सियार! तेरी बुद्धि बहुत ही छोटी है....तू चिन्ता मत कर। यह लकड़बग्घा कल से इस जंगल में नहीं दिखेगा।''

और दूसरे दिन जंगल में समाचार आग की तरह फैल गया कि हिंसक जानवरों को मारने के लिए सरकार ने नया कानून बना दिया है और इसका शिकार लकड़बग्घा हो गया। एक वनकर्मी ने उसे गोली से उड़ा दिया।

और इस तरह इस बार भी शेर निर्विरोध जंगल का राजा चुन लिया गया। विजय जुलूस में सबसे आगे सियार था। शाम को डिनर के लिए बकरियों के इंतजाम की जिम्मेदारी उस पर ही थी।

चंचल मन

चंचल सी लहरों की तरह
यूं तो मन मेरा, लहराता बहुत है।
जब–जब पढ़लूं, मैं साहित्यिक पाति
मन मयूर हो जाता बहुत है।

आप सब सागर को गागर में भरे
विद्या की देवी आप में वास करे।
ज्ञान पाने की, मुझमें लालसा बढ़े
क्योंकि चंचल सी लहरों की तरह....

ताबीज के जैसे होते हैं कविराज
बार–बार हम बीमार पड़ें
आप सबकी कविता पढ़ते ही,
दिल को सुकून सा मिले
क्योंकि चंचल सी लहरों की तरह....

मचल–मचल कर कलम कहे हमसे
तुम भी तो कुछ लिखो कसम से
बावरी बेचारी कलम हमारी
समझ न पाये ये कि हम हैं अनाड़ी
क्योंकि चंचल सी लहरों की तरह....

शब्दों को हम कैसे पिरोंये
माला सी जो बन जाये कविताएं
मन का भरम अब न टूटेगा
मुझसे भी अब एक छंद बन जायेगा।
क्योंकि चंचल सी लहरों की तरह....

कुमारी चमेली कुर्रे
नयापारा
जगदलपुर–494001
जिला–बस्तर
मो–8435452436

सिसकता सागर–दलपत सागर

हालात पे अपने सिसकता सागर हूं मैं
हृदय में मेरे शिवालय और शिव रहते हैं
समय की सारी यातनाओं को सहते हैं
मेरे पूर्वजों ने मुझे और मुझमें शिवालय को बसाया था।
आज राजनीति के दलदल में फंसा गागर हूं मैं
हालात पे अपने सिसकता...........

कभी मैं प्रकृति की सुन्दर छवि को अपने आप में समेटा था
अब मुझे और शिवालय को जलकुंभियों ने लपेटा है
मुझमें है शिवालय, मैं हूं शिवालय में
किसी ने डाला कूड़ा करकट, किसी ने आइलैंड बनाया है।
अस्तित्व से अपने खिसकता सागर हूं मैं
हालात पे अपने सिसकता..........

मेरे पूर्वजों ने मुझे और मुझमें शिवालय बनाया था
धूप–दीप और फूल–पान से मुझे सजाया, महकाया था
दायरा तो अति विशाल था मेरा
सिमटा दिया मुझे सागर के सौदागरों ने
लुप्त नहीं हुआ आज भी उजागर हूं मैं
हालात पे अपने सिसकता............

तुम मुझे पावन कर दो मैं तुम्हें करूं पावन
नीति के हथकंडे छोड़कर महादेव का मान करो
नित सागर और शिवालय को प्रणाम करो
शीतलता तो मिलती है सागर और किनारों से
मिलती नहीं है शीतलता बनावटी बौछारों से
कुछ तो मेरा ध्यान करो अतीत का दलपत सागर हूं मैं
हालात पे अपने सिसकता.............

सूरज नारायण
फ्रेजरपुर,
जगदलपुर–494001
जिला–बस्तर
मो–8962688702

यह कविता हमारे जगदलपुर के सबसे बड़े तालाब के अस्तित्व की लड़ाई के लिए लिखी गई हैं। हजारों एकड़ में फैला तालाब आज मात्र कुछ सौ एकड़ का रह गया है। शहर में कई तालाब थे अब दो तालाब ही बचे रह गये हैं। इन तालाबों पर भी भूमाफियाओं की नजरें गड़ी हुई हैं। हर कोई इसके अस्तित्व से खेलना चाह रहा है परन्तु ये समझ नहीं रहे हैं कि इसी तालाब से ही शहर का अस्तित्व है। कुंओं में पानी इसी तालाब के कारण है। लेखक एक संवेदनशील व्यक्तित्व के स्वामी हैं। इस लड़ाई में सक्रिय रूप से भाग भी लेते रहे हैं।

मंचीय काव्य व्यंग्य

महाभारत

मेरे मुहल्ले के लडकों ने, एक बड़ा स्टेज बनवाया।
उस पर महाभारत का, अखिल भारतीय मंचन करवाया।
लोग इसे देखने, दूर दूर से आ रहे थे।
साथ मे फूलों की माला भी ला रहे थे।
महाभारत शुरू हुआ
एक अत्यंत महत्वपूर्ण सीन चल रहा था
दरअसल भीम दुर्योधन से लड़ रहा था।
एकाएक आगबबूला हो, दुर्योधन ने भीम को मार दिया।
और पास पड़े कचरे के, डिब्बे में डाल दिया।
यह देख मैनेजर ने आवाज़ लगाई—
अरे! दुर्योधन भाई
ये तूने क्या कर डाला।
मरना तो तुझे था,
पर तुमने भीम को मार डाला।
तभी दर्शकों के बीच से आवाज आई—
ये कलयुग है मैनेजर भाई!
यहाँ इतिहास अब दुर्योधन लिखेगा।
इस युग की हर जंग में
बस दुर्योधन ही जीतेगा,
बस दुर्योधन ही जीतेगा,
बस दुर्योधन ही जीतेगा।

उमेश मण्डावी
प्रभारी प्राचार्य शा.
उ. मा. विद्यालय
किबई बालेंगा
(कोकोडी)
कोंडागांव छ.ग.
मो—9425593455

नामकरण

एक महाशय अपने बच्चे का नामकरण कर रहे थे।
क्या नाम रखूं ? ये सोचकर, डर रहे थे।
पंडित जी ने कहा— नाम 'र' अक्षर से रखना।
और हो सके तो, किसी राजघराने का नाम रखना।
महाशय ने बहुत सोच विचार, बच्चे का नाम रावण रख दिया।
जो कोई न कर सका, ऐसा काम कर दिया।
पड़ोसी हंसे बोले— अजीब मूर्ख हो,
बच्चे का नाम रावण रख दिया।
"र' से किसी राजा का, किसी नेता का,
किसी हीरो का नाम रख देते।
महाशय मुस्कुराए, बोले—
आप चिंता मत कीजिए।
मैं इसे हर शस्त्र में अस्त्र में पारंगत बनाऊँगा।
इसे प्रकांड विद्वान महा ज्ञानी बनाऊँगा ।
पर इसका चेहरा भयावह बनाऊँगा।
लोग इसे देखते ही डर जाएं,
ऐसा खतरनाक बनाऊँगा।
और वैसे भी आज, आदमी को पहचानना बहुत मुश्किल है।
अंदर से कुछ और, बाहर से कुछ और नजर आता है।
लड़के को देखो तो, लडकी होने का भ्रम होता है।
देश के दलाल देश के, कर्णधार बने फिरते हैं।
मन के काले, सफेद वस्त्रधारण करते हैं।
ये बच्चा भी, इसी परंपरा को आगे बढ़ाएगा।
आनेवाली पीढ़ी के लिये मील का पत्थर बन जाएगा।
क्योंकि—
नाम रावण का, पर यह काम राम का, कर जाएगा।
काम राम का कर जाएगा।

लघुकथा

वो

कृष्णधर शर्मा
द्वारा—श्री राजेन्द्र देवांगन
पी. डबल्यू. डी पारा
अवस्थी कालोनी के
सामने
गीदम, जिला—दंतेवाड़ा
पिन—494441छ.ग
मो.—9479265757

नवविवाहित पति, पत्नी बाज़ार से कुछ सामान खरीदकर हाथ में आइसक्रीम लिए बस स्टैंड आकर खाली पड़ी कुर्सियों में बैठ गए और बातें करने लगे। उनकी बातें सुनकर ऐसा लग रहा था जैसे उन्हें घर में खुलकर बातें करने को समय न मिल पाता हो। पत्नी और पति के बाजू में "वो" भी आकर बस का इन्तज़ार करते हुए बैठ गया और अनचाहे ही उनकी बातें सुनने लगा।

पति, पत्नी बातें करने में इतने व्यस्त थे कि उन्होंने अपने गंतव्य को जाने वाली 2 बसें भी छोड़ दी थी। पत्नी भी सुन्दर नाक—नक्श और आकर्षक व्यक्तित्व वाली थी और पति भी मग्न होकर उसकी बातें सुन रहा था। इसी बीच पति को अचानक महसूस हुआ की पीछे से "वो" उसकी पत्नी को देखने का प्रयास कर रहा है और पत्नी की नजरें भी कई बार पति के पीछे बैठे "वो" की तरफ जाती हुई दिखीं। अब माहौल प्रेममय न रहकर शंकामय हो चुका था। पति सहन न कर पाया और पत्नी और "वो" के बीच में कुछ इस तरह से बैठने की कोशिश करने लगा जिससे उनकी नजरें आपस में न टकरायें। उसकी यह हरकत देखकर पत्नी और "वो" सहित वहां पर बैठे कई लोगों के चेहरे पर शरारती मुस्कान आ गई जिसे देखकर पति की स्थिति हास्यमय हो चुकी थी।

जद्दोजहद

नीरस जिन्दगी की राह में, उसी का तलबगार हूं।
महबूबा मेरी है कोसों दूर, मैं आशिक बेकरार हूं।
वह केवल मेरी है कई सबूत हैं मेरे पास,
नहीं मेरे बस में जितना दहेज मांगे निर्लज्ज बाप।
जी में आता यारों सारे सबूत जलाकर कर दूं राख,
मेरी आह की न परवाह, इस जग को ले डूबूं अपने साथ।
जीने की अंतिम उम्मीद भी टूटी, वह लाचार हूं।।

मिलने का वादा करके मुझे बुलाया जाता है।
बेतुके सवालों से मेरा मजाक उड़ाया जाता है।
मेरे दर्द का भी वे तनिक नहीं करते लिहाज़।
भोली सूरत के पीछे वे हैं पक्के जालसाज़।
सजा–ए–तड़प देते हैं जैसे गुनाहगार हूं।।

उसे पाने के लिए भटकता हूं शहरोंशहर।
उसकी बेरूखी ने मुझपे ढाया कहर इस कदर।
निर्धन आशिक से उसका मिलन होगा लोगों क्योंकर।
क्योंकि रईसों की रखैल बनी बेवफा बिक–कर।
जी न पाऊंगा उसके बगैर, खुदकुशी को तैयार हूं।।

संशय में न पड़ो दोस्तों,
हर शहर में हर गली में पाओगे
फटेहाल हर युवा की
बुझी निगाहों में मुझको पाओगे।
सबूत मेरी ये डिग्रियां हैं,
निर्लज्ज बाप ये रिश्वतखोर।
सौदा मेरी महबूबा का कर
फैलाते भ्रष्टाचार ये घोर।
रिश्वत के व्यापारियों का
सताया घायल बीमार हूं।
महबूबा मेरी है नौकरी
मैं आशिक बेरोजगार हूं।

शकुन्तला शेण्डे
सुभाष नगर, बचेली,
जिला–दंतेवाड़ा
मो–9407915477

श्रीमती शकुन जी बस्तर क्षेत्र की ऐसी मंचीय कवयित्री हैं जिन्होंने बस्तर पाति के सानिध्य में रहकर पूरे छत्तीसगढ़ में अपना और क्षेत्र का नाम रोशन किया है। आज उनके कारण बस्तर को एक विशिष्ट पहचान मिली है। अपनी मीठी आवाज और आकर्षक प्रस्तुति के चलते हर मंच की शान बन जाती हैं। उनकी लेखनी भी दमदार है। नये और प्राचीन सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग अपनी कविताओं में करके कविता को पठनीय बनाती हैं।

तन्हाई में

खोई–खोई सी तुम
लगती हो इस तन्हाई में
आलम न पूछो इस जमाने का,
आलम न पूछो बेकरारी का,
किस कदर लोग तुम्हें ढूंढते हैं
इस तन्हाई में, खोई–खोई......

किसी की मखमली यादों के पिटारे
साथ में लेकर सनम,
उसकी खातिर पलक–पावड़े
बिछाई हो तुम तन्हाई में, खोई–खोई....

कर रही हो कोशिश, जीने की,
इस उबाऊ भीड़ से हटकर,
पर उसी उबाऊ भीड़ से,
किसी पसंदीदा शख़्स को,
बुलाई हो तुम, इस तन्हाई में, खोई–खोई....

बेइंतिहा प्यार में उल्कित, पुल्कित,
मिलन की उत्कट अभिलाषा,
व्याकुलता का वज्र सवार,
न मिलने पर
अजूबी हरकतों के साथ, खुद–ब–खुद
कभी हंसती हो तो ईमान से,
कभी रो भी देती हो तुम
इस तन्हाई में, खोई–खोई....

गर कोई तुम्हें पा गया,
तो उसकी किस्मत खुल गई,
मदमाती शोख निगाहें, सुनहरी जुल्फें

ये अपनी बेश–कीमती नजाकत,
क्या तुम इतनी आसानी से भूल गई,
मगर सुन लो,
यह बीरान जिन्दगी फकत
तुम्हीं से होगी आबाद
इस तन्हाई में, खोई–खोई....

जे.पी.दानी
धरमपुरा, जगदलपुर
जिला–बस्तर
मो–9424293342

सर्जिकल स्ट्राइक

परा‌क्रम का रंग चढ़ा है सत्ता की दीवारों पर,
सीना ताने लाल किला है चलने को अंगारों पर,
गर्जन सुन ली अब तो सबने छप्पन इंच के सीने की,
बात नहीं मरने की होगी बात करो अब जीने की,
पश्चताप की अग्नि में चिंगारी भी अब शोला है,
कंचनजंघा की चोटी से आज हिमालय बोला है।

दखन में चमकी थी जो, याद करो तलवारों को,
झाँसी में जो गरजी थी, याद करो ललकारों को,
सीमा पार के दुश्मन को, घर में छुपे गद्दारों को,
अल्टीमेटम अब थमा दो आंतकी सरदारों को,
सिंहगढ़ का सिंहद्वार किसी ताना जी ने खोला है,
कंचनजंघा की चोटी से आज हिमालय बोला है।

फौलादी चट्टानो में तुम जान फूंकने वाले हो,
तुम ही पापी पाकिस्तान का सीना चीरने वाले हो,
सर्जिकल में सत्रह के बदले सैंतीस खोया है,
सार्क का अपमान झेलकर फिर से दुश्मन रोया है,
पाक की नापाकी हमने चुटकी में ही तोला है,
कंचनजंघा की चोटी से आज हिमालय बोला है।

हमने सोचा मान जाएंगे भारत के एहसानों से
शिमला के समझौतों से या क्रिकेट के मैदानों से
मन की बातें ना समझे तो गन की बात समझायेंगे
ताल ठोकने वाले को धरती की धूल चटायेंगे
कुचल के रख दो उस विषधर को जिसने भी मुंह खोला है
कंचनजंघा की चोटी से आज हिमालय बोला है।

सीमा पार दुश्मन को हमने भुजदंडों पर तोला है,
घर में छुपे गद्दारो ने फिर खून देश का खोला है,
सर पे बांद कफ़न केसरिया, चिर के दावानल का दरिया,
हर हर बम्ब बम्ब हर हर बम्ब बम्ब बच्चा बच्चा बोला है,
चीर के सीना अफजल का फिर शिवा कोई डोला है,
कंचनजंघा की चोटी से आज हिमालय बोला है,
आज हिमालय की चोटी से फिर तिरंगा बोला है।

जागो फिर एक बार

दुश्मन की चाल से छल कपट के वार से,
खोलता नहीं क्या खून रक्तिम तलवार से,
उठो फिर एक बार कर दो फिर आर पार,
ये घड़ी है फैसले की वक्त को पहचानो,
जागो फिर एक बार देश के जवानों।

सर को झुकाकर घुटनों के बल चलोगे,
दूसरों के न्याय पर कब तक पलोगे.
भीख मांगने से यहां मिलता नहीं न्याय,
दुश्मनों की छोड़िए, हैं अपने भी पराए,
अपने पराए के भेद को पहचानो,
जागो फिर एक बार देश के जवानों।

छुप छुप के हमला यूं कब तक सहोगे,
अहिंसा की पूजा यूं कब तक करोगे,
अहिंसा से देश आजाद नहीं होता,
भगत सिंह और सुभाष नहीं होता,
याद करो जरा इतिहास को पहचानो,
जागो फिर एक बार देश के जवानों।

सीमा कश्मीर नहीं हिंदुकुश होती,
घाटी ये आंसू लहू के ना रोती,
देश फिर टुकड़ों में बंटने की ओर है,
आज चहुं और गद्दारों का शोर है,
उठो प्रचण्ड शान से भय होना त्यागो,
जागो फिर एक बार देश के जवानों।।

बी.एल.सारस्वत
करणी माता रेस्टोरेन्ट,
गीदम रोड
जगदलपुर–494001
जिला–बस्तर
मो–07747992671

बी. एल. सारस्वत जी बस्तर क्षेत्र के उभरते हुए ऊर्जावान वीररस के मंचीय कवि हैं। उनका शब्द चयन श्रेष्ठ है। उन्होंने अपना परचम बस्तर की सीमारेखा के पार फहराने की ठान ली है। देशभक्ति की कविताओं के साथ वे वीररस की पठन शैली में समस्याओं पर केन्द्रित कविताएं भी रचते हैं।

मत खींचो तुम लाल लकीर

कोमल है,
मत तोड़ सुमन।
लोहित धवल है,
मेरा बदन।
मत कर,
हसीन गुलबदन पर वार।
मैं विश्व सुंदरी बस्तर,
मुझ पर न खींच,
तू वो लाल लकीर,
न कर,
मेरे इज्जत को तार तार।

नीले पीले हरे मटमैले,
अंबर के तारों से फैले।
फैली हुई है,
नैसर्गिक हरियाली।
मैं बस्तर धरा,
आदिशक्ति दंतेश्वरी की,
कल–कल, छल–छल,
गाथा गाती वो त्याग वाली।
न हर मेरे वस्त्र,
न तू मेरे आंचल को चीर।

विश्व शांति की,
आदि अनुगामी मैं।
जमीर अथाह,
धैर्य अकूत मुझमें।
खनिज संपदा,
वैभव ऐश्वर्य युग से।
वन धन, जन गण मन,
इंन्द्रावती प्राणदायिनी,
विश्वमोहिनी वर दायिनी।
मैं बहती साल वनों में,
मद मस्त,
मधुमय समीर।

आज क्यों क्षुब्ध,
स्तब्ध रूष्ठ तुम पर।
लहूलुहान क्यों,
कर रहे मेरे बदन पर।

रक्त रंजित खेल,
इस भूमि पर वर्जित है।
फिर तुम मानो,
पराजय द्वन्द्व में,
तुम्हारी निश्चित है।
लहू के कतरे,
न बहाओ इस चमन पर।
न घृणित वो कर्म,
इस पावन बस्तर तन पर।
कल,
काल बन जाऊंगी तुम पर,
न ललकारो,
तुम मेरे हो प्रिय पुत्र फकीर।

ओ मेरे,
अमीर धरती के,
तुम पुत्र फकीर।
मत खींचो,
बस्तर बदन पर,
तुम लाल लकीर।

विश्वनाथ देवांगन
कोंडागांव छ.ग.
मो.–077470–40301

मेरे आंगन में खिला गुलाब देखो

सुंदरता इसकी लाजवाब देखो।
मेरे आंगन में खिला गुलाब देखो।

सपना था कि मेरे द्वार पर भी ये फूल खिले
मुझे इसके सौंदर्य का सुखद दीदार मिले
पूरा हुआ मेरा वो ख्वाब देखो
मेरे आंगन में खिला गुलाब देखो।

कांटों के बीच रहकर भी यह मुस्कुराता है
ग़मों में भी खुश रहो सदा, यही हमें बताता है
किसी नवयौवना सी विकसित इसका शबाब देखो
मेरे आंगन में खिला गुलाब देखो।

दिल में हैं इसके कई जख्म गहरे
प्रसन्न है किंतु यह,उन दुखों से परे
इसकी खूबसूरती पे, खुद शर्मिंदा महताब देखो
मेरे आंगन में खिला गुलाब देखो।

तुम मुझसे अलग कहाँ हो

तू पास नहीं,
फिर भी कोई गम नहीं
तुम्हारी याद साथ है
इतनी खुशी भी मेरे लिए कम नहीं।
सबेरा होने पर तुम भी
वही सूरज देखते हो जो मैं देखता हूं,
तुम भी उसी धरती की गोद में हो
जिस पर मैं अभी बैठा हूं।
ऊपर सिर उठा कर देखने पर
तुम्हें भी मेरी तरह दूर–दूर तक
यही नीला आकाश ही नजर आता होगा।
ये हवा जो मुझ तक आती है,
तुम्हारे गांव के पेड़ों को भी जरूर छूती होगी।
मैं जिसे पीता हूं उसी जल को
तुम भी पीते हो क्योंकि
उस जल का स्रोत भूमि के नीचे
कहीं ना कहीं तो
एक दूसरे से मिलते ही होंगे
फिर तुम मुझसे अलग कहां हो ?
फर्क बस इतना कि मैं यहां और तुम वहां हो।

अशोक नेताम
बस्तरिया
कोंडागांव छ.ग.
मो.–9407914158

नक्कारखाने की तूती

यह शीर्षक हमारे उन विचारों के लिए है जो लगातार हमारा दम घोंटते हैं परन्तु हम उन्हें आपस में ही कह सुन कर चुपचाप बैठ जाते हैं। चुप बैठने का कारण होता हैं हमारी 'अकेला' होने की सोच! इस सोच को तड़का लगता है इस बात से कि ***'सिस्टम ही ऐसा है क्या किया जा सकता है, और ऐसा सोचना पागलपन है।'*** हर पान की दुकान, चाय की दुकान और ट्रेन के सफर में लगातार होने वाली ये हर किसी की समस्या होती है, ये चिन्ता हर किसी की होती है। और सबसे बड़ी बात कि समस्या का हल भी वहीं होता है। ऐसी समस्या और उसका हल जो दिमाग को मथ कर रख देता हैं उनका यहां स्वागत हैं। तो फिर देर किस बात की कलम उठाइये और लिख भेजिए हमें।

सोशल मीडिया और स्वप्रचार

हम देखते हैं कि हमारे जीवन में फेसबुक और वाट्सएप एक महत्वपूर्ण भूमिका रखते जा रहे हैं। हमारी दिनचर्या का एक बड़ा हिस्सा अब उस पर ही बीत रहा है। समय भले ही एक दो घण्टा लगाते हैं परन्तु उसका प्रभाव पूरे दिन दिमाग पर हावी रहता है। हमारे वाट्सएप ग्रुप में देखता हूं कि कोई 2 बजे रात को ग्रुप का स्टेटस देखता है तो कोई 3 बजे रात को और कोई 4 बजे। हमारा दिन उसमें चलने वाली गतिविधियों से अछूता नहीं रह पाता है। मानसिक यंत्रणा के साथ ही साथ, वहां पर आने वाले ज्ञान के अथाह भण्डार के बावजूद पारिवारिक जवाबदारियों से व्यक्ति विमुख होता जा रहा है।

खैर! ये तो एक व्यापक प्रभाव है। जब तक एक पीढ़ी इस दौर से गुजर नहीं जाती तब तक इसकी आदत और सामाजिक प्रभाव पर कुछ कहा नहीं जा सकता। अभी संक्रमण काल है। इसलिए निर्णय देना किसी वैचारिक अतिरेक होगा।

हम यहां चर्चा करना चाहते हैं उन मानसिक बीमारों की जो सोशल मीडिया पर दिनरात अपनी फोटो और अपनी उपलब्धि का बाजार लगाये बैठे मिलते हैं। उनसे हर कोई परेशान है परन्तु वे कुछ न कुछ संबंध रखने वाले लोग हैं इसलिए लिहाज संकोच का आवरण पहनना मजबूरी है। इनमें कई प्रकार के मानसिक रोगी हैं। पहले वो जो अपनी फोटो रोज खींच खांच कर आपको टैग कर देते हैं या फिर वाट्सएप में आपके नंबर पर भेजते हैं। ये नमूने आपके ग्रुप में भी ऐसी ही फोटो भेजते रहते हैं। फोटो के साथ कविता की पंक्तियां चाहे वह खुद की हो या फिर चुराई हुईं लगाकर आपको भेजने के बाद वे अपेक्षा भी रखते हैं कि आप उसे देखकर कमेंट करें। वह भी मीठा मीठा प्यारा प्यारा। इनकी तरह तरह से फिल्मी हीरो हीरोईन के स्टाइल में खींची हुई तस्वीर देखकर चाहे जितनी भी कुढ़न हो, कुढ़ते रहिए। क्योंकि अब ऐसे लोगों का बहुमत है। किस किस से संबंध विच्छेद करेंगे। क्या ऐसे व्यवहार से वे लोगों के दिलों में स्थान बना सकते हैं ?

एक दूसरे प्रकार होते हैं जो अपनी तस्वीर मंत्री, नेता, अफसर के साथ खिंचवा कर भेजते रहते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति उन लोगों को बहुत ही प्रभावित करते हैं जो बेचारे किसी कार्यालयीन मजबूरी में फंसे होते हैं। उनके लिए ये भगवान होते हैं। भले वे वहां जाकर काम न करा पायें ये अलग बात है। ऐसे ऊपरी पहुंच वाले लोग कितने ऊपर तक पहुंच रखते हैं पता नहीं परन्तु वो साबित यही करना चाहते हैं कि उनकी तगड़ी पहुंच है। ये एक मानसिक बीमारी है जिसका बड़ा सा अंग्रेजी नाम मुझे तो पता नहीं, आप जरूर लिख भेजिए। अभी बहुत से महानुभाव ऐसी ही तस्वीरों के माध्यम से अपना मुख्य अतिथि भी ढूंढ लेते हैं। बाद में समझ आता है कि उन्होंने क्या चाहा था और क्या कर दिया। ऐसे लोग अपने छोटे मोटे सरकारी काम इसी धौंस से करवा लेते हैं। पर सरकारी अफसर भी तो पढ़े लिखे होते हैं वे भी अपनी दिखा ही देते हैं।

कुछ बीमार और भी होते हैं जो इस सोशल मीडिया के माध्यम से अपनी विपरीत लिंगी आकर्षण की क्षुधा शांत कर लेते हैं। वे इस माध्यम से लड़कियों को मेसेज भेजते हैं अपना बनाने के प्रयास करते हैं। इस काम में लड़के लड़कियां ही नहीं बड़े उम्र के लोग भी लगे हैं जो अपने पके बालों को छिपाने के लिए अपनी मूंछ मूढ़ कर रखते हैं रोज शेविंग करके खुद को तरोताजा रखते हैं। अपने जन्मदिन को पांच से दस साल कम करके अपनी प्रोफाइल में दिखाते हैं। औरतें अपनी पुरानी फोटो लगाती हैं। आपस में मिलने और बतियाने का बढ़िया माध्यम बन गया है।

वाट्सएप ग्रुप तो एक माध्यम बन गया है साहित्यकारों के लिए किसी भी ग्रुप में घुस गये वहां से महिला साहित्यकारों के नंबर पता किये डीपी देखकर पसंद किये और फिर ज्ञानी बनकर उनके पर्सनल नंबर पर हसीन सपने दिखाने लगे, खुद को बड़ा बताया और फिर धीरे धीरे चुटकुले और फिर उन चुटकुलों के बाद अश्लील शायरियां, डबल मीनिंग बातें। उनका वार नये लोगों पर पहले जाता है। इस तरह से संभावनाशील साहित्यकार ऐसे हसीन ख्वाबों के सौदागरों के बीच मर जाता है। ये सौदागर अपने आप को ऐसे कामों जबदस्त तरीके से पारंगत कर चुके हैं। इन्हें साहित्य मात्र इतना ही लेना देना है कि वे इस माध्यम से शिकार ढूंढते हैं। ऐसा नहीं है कि सिर्फ पुरूष रचनाकार ही इस काम में लगा है कई महिला रचानाकार भी मात्र टाइमपास के लिए ऐसे संबंध में विश्वास रखने लगी हैं।

कई महिला साहित्यकार तो देर रात को वाट्सएप पर बातें करके अपनी नजदीकियां बढ़ाती हैं और फिर अपना मोबाइल रिचार्ज कराना, अपनी स्कूटी में पेट्रोल भरवाना, चाय नाश्ता और फिर धीरे से पांच–सौ हजार की उधारी। इसके लिए वही एक फार्मूला है नये लोगों को फांसना। अपनी साहित्यिक छवि बनाने के लिए कुछेक चोरी की रचनाओं में हेरफेर करके बीच बीच में अपनी आवाज में भेजती रहती हैं। नया भी यही मान लेता है कि पहुंची हुई साहित्यकार हैं।

बड़ा ही भयंकर माहौल बन गया है सोशल मीडिया के आने से। नये प्रकार के बीमारों का समूह सामने आ गया है। इस बेचैनी भरे माहौल में ही जीना मजबूरी है क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।

एक प्रकार और है सोशल मीडिया के लतखोरों का जो रोज का रोज सो उठकर गुडमार्निंग, शुभ दिवस, शुभ रविवार, सोमवार भेजना अपना कर्तव्य समझता है। रोज रास्ते पर मिलने से नजरें छिपाने वाले बगैर नागा के ऐसे संदेश भेजते हैं। ऐसे लोगों को कई बार फेसबुक पर अनुरोध करना पड़ता है कि कोई भी मुझे टैग न करे। परन्तु वाट्सएप पर कैसे कहें ?

आपका डाटा और फोन मेमोरी खाने वाले ऐसे लोगों का क्या किया जाये। कैसे इन बीमारों से बचा जाये। बहुत भयंकर समस्या है। जितना समय हम वाट्सएप के अनुपयोगी मेसेज को मिटाने में लगाते हैं उतना तो पढ़ने में भी नहीं लगा पाते। फेसबुक में अच्छी जानकारी लेने के लिए बैठते ही मेसेजों की भीड़ में सबकुछ बेकार हो जाता है। यहां हंसी तो तब आती है जब अपने बाप को वृद्धाश्रम में रखने वाला विश्व पिता दिवस से पहले और बाद में भी लगातार बधाई देता नजर आता है। व्यवहार और चरित्र में ये विचलन सभी सामाजिक संबंधों में नजर आयेगी आपको।

आखिर ये सब चर्चा लेकर क्यों बैठा हूं मैं ? क्या मैं एक पागल हूं जो दुनिया कर रही है उसके विरूद्ध चलना चाह रहा हूं। शायद नहीं क्योंकि बहुत से लोग परेशान हैं परन्तु उनके पास इससे बचने का तरीका नहीं है। वे संकोच में हैं। वे अपनों की इस दादागिरी से त्रस्त हैं। अपना पैसा फुंकते देखकर भी लाचार और मजबूर हैं। क्योंकि वे अपने हैं उनसे काम पड़ सकता है, उनसे मुलाकात होती रहती है। वे बुरा मान गये तो क्या होगा। पर विचार कीजिए क्या आपका समय इतना भी बेकार और अनुपयोगी है जो ऐसे लोगों को झेलना पड़ता है ? पैसा तो समझ लीजिए हाथ का मैल है वो खर्च भी हो गया तो चलता है पर क्या समय को हम ऐसी ही खर्च कर सकते हैं ? पागल हम नहीं बल्कि वे लोग हैं इस बात को दिमाग में अच्छी तरह से बैठा लीजिए। आप अकेले नहीं ऐसे लोगों से त्रस्त बल्कि बहुत से लोग हैं। उन बहुत से लोगों को जरूरत है एक सेनापति की। उन्हें जरूरत है इसको आगे लाने वाले की। इस समस्या का हल ढूंढिये वरना पागलपन आप पर भी हावी हो सकता है। कुछ उपाय हैं। उनमें से एक महत्वपूर्ण है यही आलेख इसे टाइप करिये और चेंप दीजिए अपने वाट्सएप ग्रुप में, अपनी फेसबुक वाल पे और लिख दीजिए नीचे कि ये आलेख अच्छा लगा इसलिए शेयर किया। दो चार मानसिक बीमार तो गारंटी के साथ धराशयी हो जायेंगे। तोड़िये ऐसे लोगों को। यह भी समाज सेवा है।

दूसरा उपाय है वाट्सएप और फेसबुक में सेटींग में जाकर वीडियो और फोटो के आटोमटिक डाउनलोडिंग को बंद कर दीजिए।

तीसरा उपाय है फेसबुक की सेटिंग में जाकर टेगिंग बंद कर दीजिए और नोटिफिकेशन भी बंद करिये। वाट्सएप में नंबर में मेसेज ब्लॉक कर दीजिए। वाट्सएप ग्रुप में कोई उपाय नहीं है। वहां आपको सीधे विरोध करना होगा। रिमूव करिये ऐसे मानसिक रोगियों को। बल्कि उन्हें चिन्हांकित करके ये आलेख चेंपते रहिए। कुछ बची खुची शर्म होगी तो शायद कुछ हो जाये। नहीं तो हमें तो संतुष्टि मिलेगी कि ऐसे नमूनों को हमनें आइना दिखाने की कोशिश तो की। भले ही वे बेशर्मी के साथ यही करते रहेंगे, अलग बात है, पर आप से दूरी बनाने की कोशिश जरूर करेंगे। आप बच गये और क्या चाहिए। ऐसे लोगों के लिए ऐसी ही कुछ आलोचनात्मक बातें और लिख कर सामाजिक बहिष्कार भी करना चाहिए। हम क्यों किसी दूसरे के आनंद के लिए अपना समय और पैसा बरबाद करें। तो आइये ऐसे लोगों का बहिष्कार कर हम सब मिलकर एक आंदोलन की शुरूआत करें। इस बात को याद करके कि हमारे आपके जीवन के दिन और घंटे उतने ही हैं वो घटेंगे या बढ़ेंगे नहीं परन्तु ऐसे लोगों के कारण आपका समय बरबाद होगा जो आपके जीवन का उपयोगी समय खराब कर आपका जीवन ही घटायेगा। पुनः एक आक्रोशित निवेदन आपसे कि ऐसे चुटकुलेबाजों से दूरी बनायें और उन्हें समाज में अलग थलग करें।

पत्रिका मिली

निचोड़
सम्पादक–जय प्रकाश झा
मूल्य–15 रूपये
पता–05–प्रियदर्शनी स्टेडियम,
जगदलपुर–494001 छ.ग.

दिवान मेरा
सम्पादक–नरेन्द्रसिंह परिहार
मूल्य–20 रूपये
पता–सी004, उत्कर्ष अनुराधा,
सिविल लाईन्स
नागपुर–440001
संपर्क–09561775384

अविराम साहित्यिकी
सम्पादक–डॉ.उमेश महादोषी
मूल्य–25 रूपये
पता–121इन्द्रापुरम, बीडीए
कालोनी के पास, बदायूं रोड,
बरेली उ.प्र.
संपर्क–09458929004

विमोचन व सम्मान समारोह और पेंटिंग प्रदर्शनी सम्पन्न

साहित्य एवं कला समाज जगदलपुर द्वारा लगातार साहित्य व कला को जन–जन तक पंहुचाने के प्रयास के तहत कार्यक्रम आयोजित किये जा रहे हैं। जिसकी कड़ी में 29 जनवरी 2017 को महावीर भवन जगदलपुर भव्य आयोजन हुआ। इस आयोजन में रायपुर, कोण्डागांव, बचेली, दंतेवाड़ा, बीजापुर और जगदलपुर क्षेत्र के अनेक बुद्धिजीवियों और विद्वानों का जमावड़ा हुआ। रापुर से पधारे विद्वान डॉ चित्तरंजन कर इस आयोजन के मुख्य अतिथि थे। विशिष्ट अतिथियों में प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ महेन्द्र ठाकुर, कवयित्री श्रीमती माधुरी कर, हमारे क्षेत्र के समाजसेवी श्री संतोष जैन, युवा समाजयेवी श्री रमेश जैन शामिल थे।

सर्वप्रथम नरसिंह महांती के बनाये चित्रों की प्रदर्शनी का उद्घाटन डॉ चित्तरंजन कर जी ने किया। महांती जी बस्तर क्षेत्र के वरिष्ठ चित्रकार है जो लोगों से दूर अपने कला को निखारने में समय व्यतीत करते हैं। पहली बार उनके बनाये चित्रों की प्रदर्शनी को शहर के सैकड़ों लोगों ने देखा व सराहा।

साहित्य एवं कला समाज द्वारा प्रकाशित हल्बी–हिन्दी त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका ''गुड़दुम'' के विमोचन पर पत्रिका के संपादक मंडल सनत जैन, नरेन्द्र पाढ़ी, श्रीमती पूर्णिमा सरोज, बी.एन.आर नायडू, पद्मश्री धर्मपाल सैनी ने बताया कि यह पत्रिका हमारे क्षेत्र की लोकबोलियों के विकास व संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगी। अब इस पत्रिका के माध्यम से ऐसी रचनाओं का प्रकाशन होगा और वे रचनाएं कहीं न कहीं सुरक्षित रहेंगी। इस पत्रिका में यशवंत गौतम, शिव कुमार पाण्डे, विक्रम सोनी, पूर्णिमा सरोज आदि की रचनाएं प्रकाशित हैं।

सनत जैन के लघुकथा संग्रह ''पत्तों भरी छांव'' के विमोचन पर उन्होंने कहा, रचनाओं का प्रकाशन ही व्यक्ति को स्थापित करता है वरना किस आधार पर साहित्यकारों के रचनाकर्म की समीक्षा होगी और आंकलन होगा। अपने जीवन के अनुभवों को जरा सी मेहनत से हम लघुकथाओं में बदल सकते हैं। लघुकथाओं के विषयों के लिए हम अपने अर्थकर्म पर ही आश्रित होकर लेखन कर सकते हैं।

जयचंद्र जैन की आध्यात्मिक आलेखों का संग्रह ''विचार अपने अपने'' का दूसरे संस्करण का विमोचन इस कार्यक्रम विशेषता रहा। अब तक इसकी 1600 प्रतियां आ चुकी हैं। जयचंद्र जी जैन ने कहा लेखन कर्म ने मेरे भीतर ऊर्जा भर दी है। मेरे व्यर्थ हो जाने वाले समय को मैंने लेखन में लगाकर जीवन का सदुपयोग किया है। इस संग्रह को लोग पढ़कर अवश्य ही अपने जीवन में सुधार लाने का प्रयास करेंगे। विद्वान डॉ चित्तरंजन कर जो कि इस कार्यक्रम के मुख्य अतिथि थे, उनको जयचंद्र जैन ने अपने शिक्षकीय जीवन में पढ़ाया है।

बरखा भाटिया जो अपनी ग़ज़लों से क्षेत्र में चर्चित हैं उनका संग्रह ''परवाज एक परिन्दे की'' विमोचित हुआ। इस पर ग़ज़लकार डॉ सुरेश तिवारी एवं दोहाकार अवधकिशोर शर्मा ने अपनी समीक्षाएं पेश की। बरखा जी के पति अमित भाटिया ने भी उनके लेखन को सराहा। बरखा जी ने बताया कि एक महिला का लेखन में आगे आना बड़ा ही दुश्कर कार्य है क्योंकि घर की जिम्मेदारियां भी उठाना होता है।

कार्यक्रम के दूसरे भाग सम्मान समारोह में पदमश्री धर्मपाल सैनी जी को उनकी साहित्यिक उपलब्धियों के लिए बस्तर पाति विशिष्ट सम्मान–2017 से नवाजा गया। यही सम्मान श्री नरसिंह महांती को उनकी चित्रकला में प्रवीणता के कारण दिया गया।

बस्तर पाति सफल–2017 सम्मान श्रीमती सुषमा झा व कोण्डागांव की बरखा भाटिया को उनके काव्य क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए दिया गया।

बस्तर पाति उज्जवल सम्मान–2017 श्रीमती गुप्तेश्वरी पाण्डे, जैबेल और श्रीमती पूनम विश्वकर्मा वासम, बीजापुर को उनकी उत्कृष्ट रचनाओं के लिए दिया गया।

इस अवसर पर अपने क्षेत्र में विशिष्ट कार्य करने के लिए सार्वजनिक अभिनंदन किया गया। दंतेवाडा के दादा जोकाल को लोकबोली के लिए,कोण्डागांव के राजेन्द्र राव को बस्तर भित्ती चित्र के लिए, डॉ. भुवाल सिंह ठाकुर को बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ के लिए, हरीश अलग को समाजसेवा के लिए और मनीष मूलचंदानी को रक्तदान के क्षेत्र में कार्य करने के लिए साहित्य एवं कला समाज द्वारा अभिनंदित किया गया।

कार्यक्रम के अंत में अतिथियों ने काव्य पाठ भी किया गया।

विराट उल्लू सम्मेलन–2017

होली के अवसर पर बस्तर क्षेत्र में लगातार दूसरे वर्ष सफलतापूर्वक उल्लू सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस अवसर पर स्थानीय कवियों को बड़ा मंच उपलब्ध कराने का उद्देश्य सफल हुआ। यहां के कवियों ने धूम मचा दी। हास्य, वीर और श्रृंगार के रसों से सराबोर जनता देर रात एक बजे तक कविताओं का आनंद लेती रही।

उल्लू सम्मेलन का पार्ट–1 होता है स्थानीय नेताओं की संसद बना कर उन्हें तरह तरह के मंत्री बनाना और फिर उनसे हंसी मजाक करवाना। शहर से श्री आशुतोष त्रिपाठी, अध्यक्ष अधिवक्ता संघ बस्तर को गुटका मंत्रालय दिया गया। श्री हरीश अलग, वरिष्ठ समाजसेवी को मौन मंत्रालय दिया गया तो श्री मनीष मूलचंदानी, समाजसेवी (रक्तदान पर विशेष) को बीमार मंत्रालय, श्रीमती दीप्ति पाण्डे, सदस्य महिला एवं समाज कल्याण मंत्रालय, छ.ग. शासन को सास बहू झगड़ा मंत्रालय दिया गया। शहर के युवा व्यापारी श्री कमल चांडक को कूड़ा मंत्रालय और शहर के वरिष्ठ साहित्यकार श्री नरेन्द्र पाढ़ी को शौचालय मंत्रालय दिया गया। सभी दर्शकों को हंसा हंसाकर लोट पोट कर दिया।

इसके बाद कवि सम्मेलन आरम्भ हुआ। बालोद से आये कवि अशोक आकाश ने अपनी रचनाओं से जनता में उत्साह भरा। बीजापुर से पुषोत्तम चंद्राकर आये थे। बस्तर कोकिला के नाम से प्रसिद्व श्रीमती शकुन शेण्डे न अपनी शानदार आवाज में अपने शानदार गीत गंजल पढ़ कर जनता का दिल जीत लिया।

पुस्तक विमोचन समारोह 30 अप्रेल 2017

बस्तर पाति प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पुस्तकों का विमोचन 30 अप्रेल 17, रविवार को श्री लोकबाबू (वरिष्ठ कहानीकार, भिलाई) मुख्य अतिथि, पद्मश्री धर्मपाल सैनी (वरिष्ठ साहित्यकार एवं समाजसेवी, जगदलपुर) श्री रऊफ परवेज (वरिष्ठ साहित्यकार, जगदलपुर) श्री जयचंद्र जैन (वरिष्ठ साहित्यकार एवं समाजसेवी, जगदलपुर) श्री बी.एन.आर.नायडू (वरिष्ठ साहित्यकार एवं समाजसेवी, जगदलपुर) श्रीमती किरणलता वैद्य (वरिष्ठ साहित्यकार, रायपुर) श्रीमती शैलचंद्रा (वरिष्ठ साहित्यकार, नगरी) श्रीमती दीप्ति पाण्डे (गीतकार, एवं सदस्य महिला एवं बाल विकास छ.ग. शासन, जगदलपुर) श्री बी.आर.साहू (रिजनल मैंनेजर हस्तशिल्प विकास बोर्ड, जगदलपुर) डॉ. मनोज पानीग्राही (समाजसेवी एवं पतांजलि योग समिति छ.ग. प्रभारी, जगदलपुर) की गरिमायी उपस्थिति में हुआ। माता रूकिमनी आश्रम सेवा संस्थान की छात्राओं द्वारा सरस्वती वंदना व स्वागत गीत प्रस्तुत किया गया। सनत जैन द्वारा 'बस्तर पाति प्रकाशन' का उद्देश्य एवं परिचय दिया गया।

सनत कुमार जैन द्वारा रचित लघुकथा संग्रह सुनहरी धूप का विमोचन हुआ जिस पर जयचंद्र जैन, पद्मश्री धर्मपाल सैनी, रऊफ परवेज ने अपने विचार प्रस्तुत किये। बस्तर क्षेत्र के कहानीकारों पद्मश्री धर्मपाल सैनी, श्रीमती किरणलता वैद्य, श्रीमती खुदेजा खान, श्रीमती करमजीत कौर, श्री महेश्वर नारायण सिन्हा, सनत जैन द्वारा रचित कहानी संग्रह कथा कुंज का विमोचन हुआ जिस पर हिमांशु शेखर झा ने अपने विचार प्रस्तुत किये।

श्रीमती पूर्णिमा विश्वकर्मा द्वारा रचित कहानी संग्रह रिश्तों की महक पर किरणलता वैद्य, बी.एन.आर नायडू, पूर्णिमा विश्वकर्मा ने बात की।

श्रीमती शकुन्तला शेण्डे द्वारा रचित कविता संग्रह महुआ मंजरी का विमोचन हुआ। जिस पर डॉ.शैलचंद्रा, अवधकिशोर शर्मा शकुन शेण्डे

डॉ. शैलचंद्रा द्वारा रचित लघुकथा संग्रह घोंसला और घर और अन्य लघुकथाएं का विमोचन हुआ जिस पर उन्होंने स्वयं और उनके पति ने बात की। मंच संचालन सनत जैन द्वारा किया गया।

"बस्तर पाति" मात्र पत्रिका प्रकाशन ही नहीं है बल्कि इस क्षेत्र का साहित्यिक दस्तावेज है। हम और आप मिलकर तैयार करेंगे एक नई पीढ़ी; जो इस क्षेत्र का साहित्यिक भविष्य बनेगी। मिलजुलकर किया प्रयास सफल होगा ऐसा विश्वास है। हमें करना यह है कि लोगों के बीच जायें उनके बीच साहित्यिक रूचि रखने वाले को पहचाने और फिर लगातार संपर्क से उन्हें लिखने को प्रेरित करें। उनके लिखे को प्रकाशित करना ***'बस्तर पाति"*** का वादा है।

रचनाशील समाज रचनात्मक सोच से ही बनता हैं, ये सच लोगों तक पहुंचाने के अलावा रचनाशील बनाना भी हमारा ही कर्तव्य है। लोक संस्कृति के अनछुए पहलूओं के अलावा जाने पहचाने हिस्से भी समाज के सम्मुख आने ही चाहिये। आज की आपाधापी वाली जिन्दगी में मानव बने रहने के लिए मिट्टी से जुड़ाव आवश्यक है। खेत–किसान, तीज–त्यौहार, गीत–नाटक, कला–संगीत, हवा–पानी आदि के अलावा घर–द्वार, माता–पिता से निस्वार्थ जुड़ाव की जरूरत को जानते बूझते अनदेखा करना, अपने पांवों कुल्हाड़ी मारना है, इसलिए हमारी सोच के साथ जीवन में भी साहित्य का उतरना नितांत आवश्यक है। साहित्य मात्र कुछ ही पढ़े–लिखे लोगों की बपौती नहीं है बल्कि लोक की सम्पदा है इसलिए सभी गरीब–अमीर, पढ़े–लिखे लोगों को जोड़ने की बात है। कला की प्रत्येक विधा हमें मानव जीवन सहेजने की शिक्षा देती है। हां, ये अलग बात है कि हम उसे समझना चाहते हैं या फिर समझाना नहीं चाहते हैं। लोक जीवन, लोक संस्कृति और लोक साहित्य, इन सभी में एक ही विषय समाहित है, एक ही आत्मा विराजमान है, इसलिए किसी एक पर बात करना ही हमें मिट्टी से जोड़ देता है, हमें मानव बने रहने पर मजबूर कर देता है।

मेरा निवेदन है कि हम अपने क्षेत्र के लोगों को ***"बस्तर पाति"*** से जोड़ें और उन्हें अपनी रचनात्मक भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित करें। ***"बस्तर पाति"*** के पंचवर्षीय सदस्य बनकर इस साहित्यिक आंदोलन के सक्रिय सहयोगी बनें। ***"बस्तर पाति"*** को मजबूत बनाने के लिए आर्थिक आधार का मजबूत होना आवश्यक है। इस छोटी–सी किरण को सूरज बनना है और आप से ही संभव है, इसलिए रचनात्मक सहयोग के साथ ही साथ आर्थिक सहयोग प्रदान करते हुए आज ही पंचवर्षीय सदस्य बनें। अपने मित्रों को जन्मदिन और सालगिरह पर उपहार स्वरूप पंचवर्षीय सदस्यता दें। याद रखें, ज्ञान से बड़ा उपहार हो ही नहीं सकता है।

फार्म–4

प्रेस तथा पुस्तक पंजीयन अधिनियम की धारा 19 डी के अंतर्गत अपेक्षित 'बस्तर पाति' नामक पत्रिका से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का विवरणः–

1. प्रकाशन का स्थान–	: सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर छ.ग.
2. प्रकाशन की आवर्तता–	: मासिक
3. मुद्रक का नाम–	: सनत कुमार जैन
क्या भारतीय नागरिक है?–	: हां
4. पता–	: सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर छ.ग.
5. प्रकाशक का नाम–	: सनत कुमार जैन
क्या भारतीय नागरिक है?–	: हां
5. सम्पादक का नाम–	: सनत कुमार जैन
क्या भारतीय नागरिक है?–	: हां
पता–	: सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर छ.ग.
6. उन व्यक्तियों के नाम और पते, जो पत्रिका के मालिक और कुलप्रदत्त पूंजी के एक–एक प्रतिशत से अधिक के हिस्सेदार या भागीदार हैं–	: सनत कुमार जैन सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर छ.ग.

निवेदन अपने पाठकों और लेखकों से–

आपसे निवेदन है कि आपकी अपनी लोकप्रिय पत्रिका बस्तर पाति के लिए अपनी मौलिक कहानी, समसामायिक और जनसमस्याओं पर आधारित, सामाजिक, साहित्यिक आलेख भेजें। वर्तमान में कविताओं और लघुकथाओं का ढेर लग चुका है। अगले अंक हेतु अपनी कहानी एव आलेख ही भेजें।

संपादक बस्तर पाति

कविता कैसे बदले तेरा रूप

कविता का रूप कैसे बदलता है देखें जरा। नये रचनाकार ने लिखा था, नवीन प्रयास था इसलिए कसौटी पर खरा नहीं उतरा। उसी कविता को कैसे कसौटी पर खरा उतारें–

हवा

ठण्डी ठण्डी हवा
भीनी भीनी खुशबू वाली हवा
पहली बरसा वाली हवा
आंखों में गड़ने वाली धूल भरी हवा
शीतल मंद मंद बसंत वाली हवा
गर्म गर्म ग्रीष्म की रातों वाली हवा
उमस भरी बरसातों वाली हवा
कितने रूप हैं तेरे हवा
हवा ही है तू
पर बदल जाती है
अपने साथ रहने वाले मौसम से
ठण्डी, गर्म, शीतल
आनंददायी, त्रासकारी तो मनोहारी
कभी कभी तो लगता है
मानो तू भी इंसानों की तरह
बदल लेती है अपना रूप

यही कविता कुछ अन्य पंक्तियां जोड़ने पर देखें कैसे रूप बदलकर रोमांचित करती है–

ठण्डी ठण्डी हवा
भीनी भीनी खुशबू वाली हवा
पहली बरसा वाली हवा
आंखों में गड़ने वाली धूल भरी हवा
शीतल मंद मंद बसंत वाली हवा
गर्म गर्म ग्रीष्म की रातों वाली हवा
उमस भरी बरसातों वाली हवा
कितने रूप हैं तेरे हवा
हवा ही है तू
पर बदल जाती है
अपने साथ रहने वाले मौसम से
ठण्डी, गर्म, शीतल
आनंददायी, त्रासकारी तो मनोहारी
कभी कभी तो लगता है
मानो तू भी इंसानों की तरह
बदल लेती है अपना रूप
समय समय पर है
तेरा हर रूप है प्यारा
क्योंकि हम भी तो हैं सामाजिक प्राणी

फेसबुक वॉल से

पथराई संवेदनाओं के बीच भी मुस्कुरा लेता हूं मैं,
खुरदरी जमीन पर भी,
मिल जाती है खुशी कभी–कभी।
शुक्रगुजार हूं उस रब का,
बस अपने हक की हंसी चुरा लेता हूं मैं।

श्री शैलेन्द्र ठाकुर की वॉल से

महंगाई के छंद

–––––

डिजीटल इंडिया जरूर लाइए,
लेकिन डाटा पैक के दाम मत बढ़ाइए।
तकलीफ होती है, फेसबुक, वाट्सअप चलाने में,
प्लीज थोड़ा तो इंटरनेट को सस्ता कर दीजिए।
पेट्रोल के दाम और घटाइए,
मगर केरोसिन जरूर समय पर दिलाइए।
महंगा हो गया है चूल्हे को सुलगाए रखना,
प्लीज रसोई गैस के दाम मत बढ़ाइए।।
गरीब को भी मिले कटोरी भर दाल,
कसम है आपको महंगाई की दुकान की,
प्लीज महंगाई डायन को कुछ तो कंट्रोल में कीजिए।

कृष्ण शरण पटेल की वॉल से

सच कहता हूँ कभी कहकहों से गुजारा गया,
तो कभी सिर से ताज़ भी बिन पूछे उतारा गया।

ग़ैरों से शिक़ायत क्या बतायें, ज़रा भी नहीं,
सच कहें तो अपनों से ही अक्सर हारा गया।

लौट आती है अब हर पते से चिठ्ठियाँ,
बंद लिफाफे से अहसास कहीं सारा गया।

हरेक सफ़र को है महफूज़ रास्तों की तलाश,
मगर ध्यान रहे, इस फेर में भी कोई मारा गया।

और सूली पे चढ़ाने का अंज़ाम ले कौन ?
कोई नहीं आया जब नाम पुकारा गया।

अच्छा नहीं हाथ में कमान राज की,
सत्ता के गलियारे में देर से स्वीकारा गया।

दुआओं में "कृष्णा" को शामिल ज़रूर करना,
देखा है दुआओं बगैर ज़िंदगी बेसहारा गया।

बस्तर पाति को मूर्तरूप देने वाले सहयोगी

सदस्यः—श्रीमती जयश्री जैन, श्रीमती रचना जैन, शमीम बहार, मनीष अग्रवाल जगदलपुर, श्याम नारायण श्रीवास्तव रायगढ़, श्रीमती अशलेषा झा, नलिन श्रीवास्तव राजनांदगांव, ऋषि शर्मा 'ऋषि', बीरेन्द्र कुमार मौर्य जगदलपुर, टी आर साहू दुर्ग, श्रीमती गुप्तेश्वरी पाण्डे जगदलपुर, श्रीमती बरखा भाटिया कोण्डागांव, निर्मल आनंद कोमा, राजिम, कांति अरोरा बिलासपुर, राजेन्द्र जैन भिलाई, मिश्रा जी, नूर जगदलपुरी जगदलपुर, हरेन्द्र यादव कोण्डागांव, महेन्द्र यदु कोण्डागांव, एस.पी.विश्वकर्मा कोण्डागांव, सुश्री उर्मिला आचार्य जगदलपुर, श्रीमती प्रभाती मिंज बिलासपुर, श्रीमती सोनिका कवि, जितेन्द्र भदोरिया जगदलपुर, आर.बी. तिवारी महासमुंद, मे. होटल रेनबो जगदलपुर, संजय मिश्रा रायपुर, इश्तियाक मीर जगदलपुर, सोनिया कुशवाह, श्रीमती पूर्णिमा सरोज रूपाली सेठिया, राजेश श्रीवास्तव, महेन्द्र सिंह ठाकुर, चंद्रशेखर कच्छ, में.पदमावती किराना स्टोर्स, दिलिप देव, तृप्ति परिडा, धरमचंद्र शर्मा, हेमंत बघेल जगदलपुर जी.एस. वरखड़े जबलपुर, लक्ष्मी कुडीकल जगदलपुर, अनिल कुमार जयसवाल भिलाई, वीरभान साहू रायपुर, प्रीतम कौर, मनीष महान्ती, प्रणव बनर्जी, शेफालीबाला पीटर, यशवर्धन यशोदा, शरदचंद्र गौड़, सुरेश विश्वकर्मा श्रीमती शांती तिवारी, विनित अग्रवाल, एन.आर. नायडू, श्रीमती मोहिनी ठाकुर, जयचंद जैन, कुमार प्रवीण सूर्यवंशी, भरत गंगादित्य, मिनेष कुमार जगदलपुर, शिव शंकर कुटारे नाराणपुर, सुशील कुमार दत्ता जगदलपुर, अखिल रायजादा बिलासपुर, श्रीमती दंतेश्वरी राव कोण्डागांव, पी. विश्वनाथ जगदलपुर, श्रीमती रजनी साहू मुबई, श्रीमती वंदना सहाय नागपुर, श्रीमती माधुरी राउलकर नागपुर, श्रीमती रीमा चढ्ढा नागपुर, अरविन्द अवस्थी मिर्जापुर, देव भंडारी दार्जीलिंग, जगदीशचंद्र शर्मा घोड़ाखाल नैनीताल, श्रीमती विभा रश्मि जयपुर, नुपूर शर्मा भोपाल, मो.जिलानी चंद्रपुर, डॉ.अशफॉक अहमद नागपुर, रमेश यादव मुंबई श्रीमती सुमन शेखर ठाकुरद्वारा, पालमपुर हि.प्र., श्रीमती प्रीति प्रवीण खरे भोपाल, डॉ. सूरज प्रकाश अष्ठाना भोपाल, डी.पी.सिंह रायपुर, प्राचार्य दंतेश्वरी महाविद्यालय दंतेवाडा, रोशन वर्मा कांकेर, मनोज गुप्ता रायपुर, श्रीमती कमलेश चौरसिया नागपुर, डॉ. कौशलेन्द्र जगदलपुर, पूनम विश्वकर्मा बीजापुर, अमृत कुमार पोर्ते, जगदलपुर, अविनाश ब्यौहार जबलपुर, धनेश यादव, नारायणपुर, कृष्णचंद्र महादेविया, केशरीलाल वर्मा, बचेली, संदीप सेठिया तोकापाल, श्रीमती हितप्रीता ठाकुर, परचनपाल, गोपाल पोयाम, पंण्डरीपानी, श्रीमती खुदेजा खान, जगदलपुर, श्रीमती वीना जमुआर पूना, श्रीमती रजनी त्रिवेदी, जगदलपुर श्रीमती मेहरून्निसा परवेज़, भोपाल, धरणीधर, डिमरापाल, चंद्रकांति देवांगन, जगदलपुर, श्रीमती तनुश्री महांती जगदलपुर, चंद्रमोहन किस्कू झारखण्ड, डॉ उषा शुक्ला जगदलपुर, चमेली कुर्रे जगदलपुर, क्षत्रसाल साहू दुर्गापुर, गौतम कुमार कुण्डू जगदलपुर, रीना जैन जगदलपुर, अलका पाण्डे भानपुरी, प्रहलाद श्रीमाली, चेन्नई मिथिलेश अवस्थी नागपुर, उमेश मण्डावी कोण्डागांव, त्रिलोक महावर अम्बिकापुर, पूर्णिमा विश्वकर्मा, नासिक,बालकृष्ण गुरू खैरागढ़, डॉ धुंडीराज, कोल्हापुर

संस्थापक सदस्यः—

श्री एम.एन.सिन्हा, दल्ली राजहरा छ.ग.
श्री आशीष राय, जगदलपुर, छ.ग.
श्री अमित नामदेव, रायपुर, छ.ग.
श्री गौतम बोथरा, रायपुर, छ.ग.
श्री कमलेश दिल्लीवार, रायपुर, छ.ग.
श्री सुनील अग्रवाल, कोरबा, छ.ग.
श्री संजय जैन, भाटापारा, छ.ग.
श्रीमती ममता जैन, जगदलपुर, छ.ग.
श्री सनत जैन, जगदलपुर, छ.ग.

परम सहयोगीः—

श्रीमती उषा अग्रवाल, नागपुर
श्री महेन्द्र जैन, कोण्डागांव
श्री आनंद जी. सिंह, दंतेवाड़ा
श्री विमल तिवारी, जगदलपुर
श्री उमेश पानीग्राही, जगदलपुर

बस्तर पाति का कवर पेज एवं भीतर के चित्र—

श्री नरसिंह महान्ती

श्री नरसिंह महान्ती बस्तर क्षेत्र के वो कलाकार हैं जो नाम से दूर चुपचाप अपना सृजन कर रहे हैं। इनका सृजन बस्तर के जनजीवन के साथ ही साथ बस्तर का प्राकृतिक सौन्दर्य भी समेटे हुये है।
अपनी तुलिका से कुछ ही पलों में सौन्दर्य गढ़ लेते हैं। किसी भी दृश्य की बारीक से बारीक विशेषता इनकी दृष्टि से बची नहीं रह पाती है। मुख्यतः वाटर कलर के उपयोग से जीवंत दृश्य उकेरने वाले महान्तीजी पानी के दृश्य यूं उभारते हैं कि समझना मुश्किल हो जाता है कि पानी का चित्र है अथवा पानी ही है। पेन्सिल के प्रयोग से ब्लैक एण्ड व्हाइट रेखाओं द्वारा बनाये चित्रों की छटा देखते ही बनती है। इनके बनाये चित्रों की प्रदर्शनी 'आकृति' में लग चुकी है और ***बस्तर पाति*** परिवार पुनः प्रदर्शनी लगाने पर विचार कर रहा है जिससे कि जल्द ही शहर के लोगों को उनका छिपा खजाना देखने को मिले। इनके बनाये चित्र स्थानीय पत्रिकाओं एवं अखबारों में लगातार आते रहते हैं। कई साहित्यिक संग्रहों के मुखपृष्ठ आपके बनाये चित्रों से शोभित हैं।

अंतिम पन्ना फोटोग्राफर के लिए—

श्री सुनील खेडुलकर

''बस्तर पाति'' कला को समर्पित है। अंतिम रंगीन पन्ना फोटोग्राफर के लिए ही आरक्षित कर दिया गया है। इस अंक के फोटोग्राफर हैं श्री सुनील खेडुलकर!
जिला सहकारी बैंक के शाखा प्रबंधक, बैडमिंटन के उम्दा खिलाड़ी, हंसमुख, मिलनसार और बारीक दृष्टि के स्वामी। उनके खींचे हुए फोटोग्राफों में प्राकृतिक सौन्दर्य तो रहता ही है साथ ही प्रकृति के रहस्य भी खोजने का प्रयत्न भी दृष्टिगोचर होता है। सामाजिक विसंगतियां, सांस्कृतिक धरोहर कुछ भी नहीं छिप पाता है इनकी ऊर्जावान नजरों से। सरल स्वाभावी खेडुलकर जी के बारे में जब बस्तर पाति को पता चला तो पहले ही संपर्क में उन्होंने ढ़ेरों फोटोग्राफ दे दिये। उन गहराई लिए फोटोग्राफों का अवलोकन हम सब मिलकर समय—समय पर करेंगे और उनके दृष्टिकोण से दुनिया को देखने, समझने का प्रयास करेंगे।